ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें । वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे ।
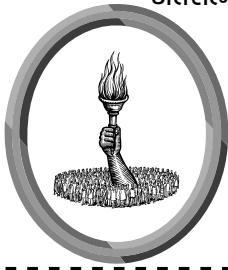
नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का मासिक पत्र

देवत्व ही जीवन का सर्वोत्तम वरदान

असुरों से सभी घृणा करते हैं; क्योंकि उनकी भावनाओं में स्वार्थपरता और भोग-लालसा इतनी प्रबल होती है कि वे इसके लिए दूसरों के अधिकार, सुख और सुविधाएँ छीन लेने में कुछ भी संकोच नहीं करते। उनके पास रहने वाले भी दुःखी रहते हैं और व्यक्तिगत बुराइयों के कारण उनका निज का जीवन तो अशांत होता ही है। दुःख की यह अवस्था किसी के लिए भी अभीष्ट नहीं है।

हम सुख भोगने के लिए इस संसार में आए हैं। दुःखों से हमें घृणा है, पर सुख के सही स्वरूप को भी तो समझना चाहिए। इंद्रियों के बहकावे में आकर जीवन-पथ से भटक जाना, मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी के लिए श्रेयस्कर नहीं लगता। इससे हमारी शक्तियाँ पतित होती हैं। अशक्त होकर भी क्या कभी सुख की कल्पना की जा सकती है ? भौतिक शक्तियों से संपन्न व्यक्ति का इतना सम्मान होता है कि सभी लोग उसके लिए छटपटाते हैं, फिर आध्यात्मिक शक्तियों की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। देवताओं को सभी नतमस्तक होते हैं; क्योंकि उनके पास शक्ति का अक्षय कोश माना जाता है। हम अपने देवत्व को जाग्रत करें, तो वैसी ही शक्ति की प्राप्ति हमें भी हो सकती है। तब हम सच्चे सुख की अनुभूति भी कर सकेंगे और हमारा मानव जीवन सार्थक होगा। हमें असुरों की तरह नहीं, देवताओं की तरह जीना चाहिए। देवत्व ही इस जीवन का सर्वोत्तम वरदान है; हमें इस जीवन को वरदान की तरह ही जीना चाहिए।

संस्थापक/संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ युगद्रष्टा
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
ईश्वर शरण पाण्डेय
सहसंपादक
सूर्यमणि तिवारी
दीनदयाल अमृते
कार्यालय
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
पि० को० 281003

दूरभाष नंबर
(0565) 2530115, 2530128, 2530399,
मो. 09927086287, 09927086289
(इन पर एस.एम.एस. न करें)
समय : प्रातः 9 से सायं 5 बजे

नया ई-मेल :
yugnirman@yugnirmanyojna.org

अप्रैल — 2020
प्रकाशन तिथि 17-03-2020
वर्ष : 56   अंक : 10
वार्षिक शुल्क : 110 रु०
आजीवन : 2500 रु०
(बीसवर्षीय)
वार्षिक विदेश : 900 रु०

अनुक्रमणिका

अप्रैल-मई, 2020 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	02 अप्रैल	श्रीरामनवमी/समर्थ गुरु रामदास जयंती
शनिवार	04 अप्रैल	कामदा एकादशी
सोमवार	06 अप्रैल	महावीर स्वामी जयंती
बुधवार	08 अप्रैल	हनुमान जयंती
मंगलवार	14 अप्रैल	आंबेडकर जयंती
शनिवार	18 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी
शनिवार	25 अप्रैल	शिवाजी/परशुराम जयंती/रमजान
रविवार	26 अप्रैल	अक्षय तृतीया
मंगलवार	28 अप्रैल	आद्यशंकराचार्य जयंती
बुधवार	29 अप्रैल	सूर्य षष्ठी
सोमवार	04 मई	मोहिनी एकादशी
बुधवार	06 मई	नृसिंह जयंती
गुरुवार	07 मई	बुद्ध पूर्णिमा
सोमवार	18 मई	अपरा एकादशी
शुक्रवार	22 मई	वट सावित्री व्रत
सोमवार	25 मई	महाराणा प्रताप जयंती
गुरुवार	28 मई	सूर्य षष्ठी

सच्चा उपदेशक कौन?

सच्चा उपदेशक वही होता है, जो पहले स्वयं आचरण करे, तत्पश्चात सदुपदेश दे। कहा गया है—''पर उपदेश कुशल बहुतेरे।'' दूसरों को उपदेश देने वालों की संख्या बहुतायत है, परंतु ऐसे लोग कम ही हैं, जो पहले उन पर स्वयं आचरण करते हैं।

सच्चा उपदेशक वही होता है, जो जैसा आत्मा में हो, वही मन में; जो मन में हो, वही वाणी के द्वारा व्यक्त करे। अर्थात जो स्वयं आचरण में लाए वही उपदेश करे, जिससे सभी लोगों में विद्या, बल व धन का उत्कर्ष हो। यही सदुपदेश है।

भारत देश ऋषियों का, गुरुओं का देश है; जहाँ से विश्व को प्रकाश मिलता रहा है। यहीं से ऋषियों ने उच्चकोटि का विचार करने की शैली दी थी। पहले विचार करने की शैली उच्चकोटि की थी, इसलिए सबका जीवन भी उत्कृष्ट था। आजकल विचार करने की शैली निम्न स्तर की हो गई है; इसी से ओछे विचार करने वाले और स्वार्थ की ही इच्छा रखने वाले समाज के कर्णधार बन गए हैं और समाज में ऐसे ही निकृष्ट विचारों को प्रसारित करते रहते हैं।

धर्म के ठेकेदारों ने, तथाकथित उपदेशकों ने ब्राह्मणत्व का और अध्यात्म का यही मतलब समझा है कि भोली-भाली जनता को उलटे-सीधे उपदेश देकर बरगलाते रहो। ऐसे उपदेशकों के विचार भी निम्न स्तर के हैं और आचरण भी निम्न स्तर के। उनका तो एक ही मूलमंत्र है—'मुँह में राम बगल में छुरी'। आज हमारा समाज इन उपदेशकों के रूढ़िवादी चिंतन तथा भ्रष्ट आचरण के कारण जर्जरावस्था में पहुँच गया है। उनके आचरण में उत्कृष्टता के अभाव के कारण उनकी वाणी में कोई प्रभाव भी नहीं होता और यदि वे कोई अच्छी बात भी कहते हैं, तो भी लोगों के दिलों में वह बात घर नहीं कर पाती। स्वयं का जीवन प्रभावित हो तो लाखों लोगों के हृदय पर असर होता है। उपदेश देना एक बहुत ही पैना हथियार है; लेकिन शर्त यही है कि पहले उसे स्वयं आचरण में लाकर उदाहरण प्रस्तुत किया गया हो।

श्रावणी पर्व पर हम सप्तर्षियों की पूजा करते हैं और यह इसलिए करते हैं कि उन्होंने हमें मन, वचन और कर्म में पूरी ईमानदारी के साथ समन्वय रखते हुए सत्कर्मों में प्रेरित करने के उपदेश दिए। वे हमारे आदर्श पुरुष हैं, परंतु आज ब्राह्मणत्व डूब रहा है। ऐसे में हम सभी पर 'ऋषि-परंपरा के पुनर्जीवन' की जिम्मेदारी है; अपनी 'कथनी और करनी' में एकरूपता लाने की आवश्यकता है। यह तभी संभव होता है, जब मनुष्य 'सादा जीवन-उच्च विचार' के आदर्श को अपनाए और अपने हृदय में सदैव शुद्ध व पवित्र भावनाओं को ही आश्रय दे। जीवन में सादगी का स्वभाव होने से न तो मन भौतिक समृद्धियों की ओर लालायित होता है और न दूसरों को देखकर मन में ईर्ष्याभाव जाग्रत होता है। लोभ, मोह, क्रोध की दुष्प्रवृत्तियाँ स्वतः ही दूर भाग जाती हैं। इनके स्थान पर सद्गुणों का अभिवर्द्धन होता है।

किसी लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सुनिश्चित निर्धारण का नाम ही संकल्प है।

हमारे ऋषियों ने इसी जीवनशैली को अपनाया था। सदैव प्रभुचिंतन में निमग्न रहकर लोकहित के कार्यों में अपने को समर्पित किए रहते थे। जन-जन में सात्त्विकता का विकास करने हेतु; उन्हें तेजस्वी, ओजस्वी एवं वर्चस्वी तथा विद्यावान, बलवान एवं धनवान बनाने के लिए उचित मार्गदर्शन करते रहते थे।

इसी में ब्राह्मणत्व की सार्थकता है।

परिवार संस्था की उपयोगिता को समझें

परिवार का नाम लेते ही एक ऐसे परिकर का चित्र साकार हो उठता है; जिसमें अनेक सदस्य हों तथा परस्पर एकदूसरे से विभिन्न रिश्तों से जुड़े हों। न केवल रिश्तों से, वरन भावनात्मक सुदृढ़ संबंधों से भी जहाँ स्नेह, सद्भाव और सहकार की त्रिवेणी बहती हो। वह दिन मानव प्रगति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा होगा, जिस दिन परिवार संस्था का अभ्युदय हुआ होगा। जीने को तो अन्य जीव-जंतु भी एक बाड़े में जी लेते हैं। पेट-प्रजनन की जरूरतें भी पूरी कर लेते हैं, पर उस परिकर को परिवार नहीं कहा जा सकता। उनके शारीरिक स्वार्थ ही परस्पर एकदूसरे को बाँधे रहते हैं। मोटी दृष्टि से देखने पर लगता है कि यहाँ भी कोई परिवार है, पर यह मान्यता अधिक समय तक कायम नहीं रहती; झटका लगता है और वह बनाई गई धारणा यह देखकर टूट जाती है कि वे अपने स्वार्थों के कारण मात्र जुड़े हुए हैं। प्रकृति यदि अपनी सुव्यवस्था एवं सृष्टिक्रम चलाने के लिए प्रेरणा देकर उन्हें जबरन एकदूसरे से सामयिक अवधि के लिए जोड़े रहती है, तो इसे पशुओं का स्नेह, सद्भाव, त्याग अथवा बलिदान नहीं कहा जा सकता। यह तो प्रकृति की विशेषता है, न कि उन जीवों की।

पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-बेटी, भाई-बहन आदि जैसे सुमधुर संबंध तो मानव-परिवार में ही दिखाई पड़ सकते हैं। मनुष्येतर जीवों में न तो कोई पति है और न पत्नी। भाई-बहन के, पिता-पुत्र के संबंधों का दर्शन पशु-समाज में कहाँ होता है ? वहाँ कोई रिश्ता नहीं है। जीवनपर्यंत संबंधों की स्थिरता एवं प्रगाढ़ता तो उस परिवार में ही दिखाई पड़ सकती है, जिसमें मनुष्य रहता है।

मनुष्य की शारीरिक कम मानसिक एवं भावनात्मक आवश्यकताएँ अधिक हैं। नौ इंच के पेट के लिए औसतन डेढ़ पाव आटा पर्याप्त है। पाँच गज कपड़े का आवरण तन ढकने के लिए चाहिए। थोड़े प्रयत्नों द्वारा इनकी पूर्ति संभव है। फिर इतना अधिक श्रम पुरुषार्थ करने की मनुष्य को आवश्यकता क्यों पड़ी ? इसलिए कि उसे मानसिक तृप्ति चाहिए। उस परितृप्ति के लिए ही वह अथक श्रम करता, साधनों का जाल-जंजाल जुटाता है। नाम तथा यश की कामना भी मनोवैज्ञानिक है, जो मनुष्य को सदा नाच नचाती रहती है। भावनाओं को पोषण न मिले, तो वह विक्षिप्त बन जाता है। पशुओं की भाँति शरीर को पोषण तथा संबद्ध इंद्रियों की तृप्ति तो कहीं भी संभव है, पर मन: एवं भावजगत की आवश्यकताएँ संसार में कहीं भी पूरी नहीं हो सकती हैं। वे एकमात्र परिवार के भावभरे वातावरण में ही पूर्ण हो सकती हैं। मनुष्य की स्थिति पशुओं से सर्वथा भिन्न है। बाड़े में कैद करके पशुओं की तरह पेट एवं प्रजनन की जरूरतें पूरी करके उन्हें संतुष्ट नहीं रखा जा सकता।

सराय एवं होटलों में सारी चीजें उपलब्ध रहती हैं। पैसे द्वारा उन्हें खरीदा जा सकता है, पर बहन का स्नेह और माँ की ममता, पिता का वात्सल्य तथा पत्नी का प्यार भारी कीमत देकर भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ऐसी कोई भी संस्था अथवा संगठन अब तक नहीं बन सके हैं, जो परिवार संस्था का स्थानापन्न बन सकें और मनुष्य के शरीर से इतर मन: एवं भावजगत की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। घूम-फिरकर नजर सदियों से चली आ रही परिवार संस्था पर ही जाती है; जहाँ मानसिक एवं भावजगत की परितृप्ति संभव है।

बीसवीं सदी में कुछ देशों में अभिनव प्रयोग हुए। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कम्यून व्यवस्था अत्यंत उपयोगी मानी गई। वर्गक्रांति के उपरांत जिन देशों में कम्यूनिज्म की व्यवस्था कायम हुई, वहाँ की सामाजिक प्रणालियों में भी आमूलचूल परिवर्तन किए गए। रूस ने बच्चों के पालन-पोषण के लिए धायघर खोले, पर वह प्रयोग पूर्णतया असफल रहा। अपनी अनेकानेक विशेषताओं के बावजूद भी कम्यून

प्रणाली इसलिए सफल नहीं हो सकी; क्योंकि उसमें पारिवारिक भावना का अभाव था। चीन में भी इसी प्रकार की असफलता हाथ लगी। सफलता का उद्घोष करना एक बात है, पर उसे सही-सही शब्दों में करतलगत करना दूसरी बात है। विचारकों का मत है कि कम्यून व्यवस्था सैद्धांतिक रूप से अत्यंत उपयोगी है। उसके आर्थिक एवं सामाजिक सिद्धांत कल्याणकारी हैं, पर उसका भविष्य उज्ज्वल होगा, यह इसलिए संदिग्ध है कि जीवन के लिए सदाशयता का समावेश उसमें होना चाहिए; वह नहीं हो सका। मनुष्य जाति के लिए कम्यून प्रणाली का, लार्जर फैमिली का प्रयोग कौटुंबिक भावना के आधार पर ही सफल हो सकेगा।

संबद्ध असफलता का एक कारण यह भी है कि प्रचलित कम्यून प्रणाली अमनोवैज्ञानिक तथा अव्यावहारिक आदर्शों पर आधारित है। आर्थिक सुनिश्चितता ही पर्याप्त नहीं है; मनुष्य के विचारों एवं भावनाओं का भी पोषण चाहिए। यह उतना ही जरूरी है, जितना कि शरीर के लिए आहार-वस्त्र एवं निवास के लिए आवास। कम्युनिज्म विचारधारा से अनुप्राणित देशों में शिशुघरों में पालन-पोषण का प्रयोग असफल रहा।

'दि फैमिली' पुस्तक में हेलेन बोसाँ लिखते हैं, ''संसार बिना कुटुंब के उसी प्रकार का होगा; जैसे बिना सूर्य के आकाश। सूर्य बादल से ढक सकता है, किंतु लुप्त नहीं हो सकता। कुटुंब व्यवस्था की दीवार हिल सकती है, किंतु उसका अभाव असंभव है।''

सीखने एवं अनुभव प्राप्त करने तथा किसी विषय विशेष में प्रवीणता प्राप्त करने की आवश्यकता तो बाद में पड़ती है। संबद्ध स्कूली एवं सामाजिक संस्था इस आवश्यकता की पूर्ति भी करती है, पर व्यक्तित्व के विकास के लिए जिन सुसंस्कारों की जरूरत पड़ती है; उनका बीजारोपण तो परिवार संस्था में ही होता है; उन परिवारों में जो सही अर्थों में परिवार नाम को सार्थक करते हैं। 'एटीकेट' मात्र सिखाने वाले कितने ही स्कूल पश्चिमी देशों की नकल पर खुलते जा रहे हैं। अपने प्रयास में सीमित प्रयोगों के लिए वे सफल भी रहे हैं; पर समाज, देश और संस्कृति के सुसंस्कारों से युक्त जिन सुसंस्कृत व्यक्तित्वों की जरूरत है; उन्हें वे पाने में सर्वथा असमर्थ हैं। यह महत्त्वपूर्ण कार्य तो सद्भाव, सुसंस्कारसंपन्न परिवार के वातावरण में ही संपन्न हो सकता है।

परिवार संस्था की उपयोगिता, आवश्यकता असंदिग्ध है, पर इस सचाई से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि परिवारों का स्तर गिरा है। वे सुमधुर संबंध समाप्त होते जा रहे हैं, जिनके कारण परिवार गौरवान्वित होते थे। संकीर्ण स्वार्थपरता का घुन परिवार संस्था को भीतर-ही-भीतर खोखला बनाने में संलग्न है। पश्चिमी देशों में तो परिवारों की स्थिति और भी बुरी है। संबंधित सदस्यों के रिश्ते मात्र समझौते बनकर रह गए हैं। वहाँ पारिवारिक सद्भावना समाप्त होती जा रही है। आधुनिक सभ्यता में पले समाज में तो यह विष बुरी तरह फैलता जा रहा है। अशिक्षित एवं पिछड़े समझे जाने वाले क्षेत्रों में अभी भी सद्भावना एवं सदाशयता भरपूर है। सुशिक्षितों एवं प्रगतिशीलों में भी वह पूर्णतया अभी समाप्त नहीं हुई है। आवश्यकता दोनों ही क्षेत्रों में परिमार्जन की है। भारतीय परिवारों को सुगठित सुसंस्कृत बनाने के लिए संस्कारीकरण के मनोवैज्ञानिक सनातन उपचारों का अवलंबन लेना होगा। तभी परिवार संस्था श्रेष्ठ व्यक्तित्वों की गलाई-ढलाई करने में समर्थ हो सकेगी। □

सारी उपासना का सार है—पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना। जो शिव को दीन-हीन, दुर्बल और रोगी में देखता है, वही वास्तव में शिव की उपासना करता है और जो शिव को केवल मूर्ति में देखता है, उसकी उपासना तो केवल प्रारंभिक है। जो मनुष्य शिव को केवल मंदिरों में देखता है, उसकी अपेक्षा शिव उस व्यक्ति पर अधिक प्रसन्न होते हैं जिसने बिना किसी प्रकार जाति, धर्म या संप्रदाय का विचार किए, एक दीन-हीन में शिव को देखते हुए उसकी सेवा और सहायता की है।

संस्कार - परंपरा और व्यक्तित्व निर्माण

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में संस्कारों का सर्वप्रथम स्थान है। लोगों का सदा से ही विश्वास रहा है कि मनोविचारों का प्रभाव मनुष्य की कार्य करने की प्रवृत्ति और शक्ति पर पड़ता है। इस प्रकार संस्कार भविष्य के लिए प्रगति का संदेश देते हैं और उत्साह बढ़ाते हैं। मानव जीवन की प्रगति के पथ में संस्कार सोपान के समान हैं, जो क्रम से उसको अधिक ऊँचा उठाते जाते हैं। मुनिवर पराशर ने संस्कारों की उपयोगिता का उल्लेख इन शब्दों में किया है—''जिस प्रकार चित्रण अनेक रंगों के द्वारा प्रस्फुटित होता है; वैसे ही विधिपूर्वक संपन्न किए हुए संस्कारों के द्वारा व्यक्ति में ब्राह्मणत्व का विकास होता है।''

भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य के जीवन का एकमात्र यही उद्‌देश्य माना गया है कि वह अपने जीवनकाल में अधिक-से-अधिक सुख एवं आनंद की प्राप्ति करे और जीवन के पश्चात उसे स्वर्ग अथवा मुक्ति की प्राप्ति हो। अत: सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि मानव जीवन दीर्घायु हो। उपनिषद्‌कारों ने सौ वर्ष के कर्मठ जीवन की कल्पना की थी। सौ वर्ष के जीवन में पूर्ण आनंद की प्राप्ति के लिए आवश्यक था कि शरीर स्वस्थ रहे और इंद्रियाँ सशक्त रहें। तभी तो जीवन में आनंद की प्राप्ति संभव हो सकती है। इसी को ध्यान में रखते हुए ऋषियों ने सभी दिशाओं में व्यक्तित्व के विकास के लिए योजनाएँ बनाईं। मानव के व्यक्तित्व का विकास जितनी मात्रा में जिस दिशा में हो पाता है; उतनी ही मात्रा में उस दिशा में जीवन की सफलता संभव होती है। देव संस्कृति के अंतर्गत व्यक्तित्व के विकास का प्रथम सोपान संस्कार-परंपरा के माध्यम से ही आरंभ हुआ।

आयुर्वेदिक रसायन बनाने की अवधि में उस पर कितने ही संस्कार डाले जाते हैं। कई बार कई प्रकार के रसों में उसे खरल किया जाता है और कई बार उसे गजपुट आदि विधियों द्वारा अग्नि में जलाया, तपाया जाता है; तब कहीं वह रसायन ठीक तरह तैयार होती है और साधारण-सी राँगा, जस्ता, ताँबा, लोहा, अभ्रक, सोना जैसी कम महत्त्व की धातुएँ चमत्कारिक शक्तिसंपन्न बन जाती हैं। ठीक इसी तरह मनुष्य को भी समय-समय पर विभिन्न आध्यात्मिक उपचारों द्वारा सुसंस्कृत बनाने की महत्त्वपूर्ण पद्धति भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने विकसित की थी। उसका परिपूर्ण लाभ भारत देशवासियों ने हजारों-लाखों वर्षों से उठाया है। किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा, सत्संग, वातावरण, परिस्थिति, सूझ-बूझ आदि अनेक बातों की आवश्यकता होती है। सामान्यत: ऐसे ही माध्यमों से लोगों की मनोभूमि विकसित होती है। इसके अतिरिक्त तत्त्ववेत्ताओं ने मनुष्य की अंत:भूमिका को श्रेष्ठता की दिशा में विकसित करने के लिए कुछ ऐसे सूक्ष्म उपचारों का भी आविष्कार किया है; जिनका प्रभाव शरीर तथा मन पर ही नहीं, सूक्ष्म अंत:करण पर भी पड़ता है और उसके प्रभाव से मनुष्य को गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से समुन्नत स्तर की ओर उठने में सहायता मिलती है।

इस आध्यात्मिक उपचार का नाम 'संस्कार' है। संस्कार का अर्थ है—किसी वस्तु को ऐसा रूप देना, जिसके द्वारा वह अधिक उपयोगी बन जाए। उपवन में लगाए हुए किसी पौधे को प्रकृति जब अपने ढंग से बढ़ाती जाती है, तो माली अपनी कैंची से उस पौधे की टहनियों और पत्तों को काट-छाँटकर अन्य पौधों के सामंजस्य में लाकर उसका संस्कार करता है। मानव के संस्कार के द्वारा उस योजना का बोध होता है, जो उसकी शारीरिक और मानसिक शुद्धि के साथ ही उसके समक्ष भावी जीवन की उत्थानमयी परंपरा प्रस्तुत करती है। संस्कार प्राय: व्यक्तिगत होते हैं, पर ऐसा होने पर भी संस्कार संपादन की साधारणत: सारी प्रक्रियाएँ सामूहिक होती हैं और इस प्रकार समाज के समक्ष समय-समय पर जीवन के उच्चतम

आदर्शों की प्रतिष्ठा होती रहती है। भारत की सदा से धारणा रही है कि मानव के व्यक्तित्व विकास के लिए आध्यात्मिक दिशाओं का तत्त्वानुशीलन और अनुपालन तथा गुरुजनों द्वारा किसी व्यक्ति की आत्मिक प्रगति के लिए कामना करना विशेषत: वैदिक मंत्रों के माध्यम से प्रभावोत्पादक और समर्थ सिद्ध होता है। संस्कार की प्रक्रियाओं में देवताओं के समक्ष शुद्ध, संस्कृत और उन्नतोन्मुख भावी जीवन की प्रतिज्ञा की जाती है। इसके पीछे तथ्य यह है कि भावनाओं और विचारों के अनुकूल हमारी परिस्थितियों की रूपरेखा बनती है और इन्हीं के अनुरूप हमारी शक्तियों और प्रवृत्तियों का विकास या ह्रास होता है।

संस्कार विधि में दिव्यशक्तियों का आवाहन और उनके ग्रहण की कल्पना का उदय धर्म की तत्संबंधी चेतना को प्रकट करता है। यह आयोजन शुभ और कल्याण की अभिवृद्धि तथा अशुभ, अमंगल के निवारण के लिए प्रधान रूप से होता रहा है। संस्कृति के आदिकाल से ही मानव के जीवन में नित्य ही ऐसे अवसर आते रहे हैं; जब वह दिव्यशक्तियों का सहारा ढूँढ़ता रहा है। भावी जीवन को कल्याणमय और अभ्युदयशील बनाने का विचार स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि संस्कृति के आदिकाल से ही संस्कारों का प्रचलन किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक भू-भाग में सदा ही रहा है और रहेगा।

देव संस्कृति के अंतर्गत संस्कार 16 प्रकार के हैं; जिन्हें '**षोडश संस्कार**' कहते हैं। माता के गर्भ में आने के दिन से लेकर मृत्यु तक की अवधि में समय-समय पर प्रत्येक देव संस्कृति के अनुयायी को 16 बार संस्कारित करके एक प्रकार का आध्यात्मिक रसायन का रूप प्रदत्त किया जाता रहा है। प्राचीनकाल में प्रत्येक भारतीय इसी प्रकार का एक जीता-जागता रसायन होता था। मनुष्य शरीर में रहते हुए भी उसकी आत्मा देवताओं के स्तर की बनती थी। यहाँ के निवासी '**भूसुर**' अर्थात पृथ्वी के देवता कहे जाते थे। उनके निवास की यह पुण्यभूमि भारतमाता '**स्वर्गादपि गरीयसी**' समझी जाती थी। संस्कारवान व्यक्तियों को तथा उनके निवास स्थान को ऐसा गौरव मिलना उचित भी था।

सोलह संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास व अंत्येष्टि इस क्रम से वर्णित किए गए हैं, किंतु आज के समय में जो व्यावहारिक नहीं हैं या जिनकी उपयोगिता नहीं रही, उन छह को छोड़कर तथा जन्मदिवस, विवाहदिवस जैसे आज के दो महत्त्वपूर्ण संस्कारों को जोड़कर कुल बारह संस्कार ऐसे हैं, जो अपनी वैज्ञानिक महत्ता से समूचे समाज को नई दिशा दे सकते हैं। इसमें प्रयत्न यह भी किया गया है कि जिन संस्कारों को छोड़ना पड़ा है; उनकी महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ एवं शिक्षाएँ उन संस्कारों में जोड़ दी जाएँ, जिन्हें उन्हीं दिनों मनाया जाता है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत; इन तीनों की प्रमुख प्रक्रिया गर्भवती के लिए नियत एक ही संस्कार में जोड़ दी गई है। जातकर्म और नामकरण का विधान सम्मिलित बना दिया गया है। वेदारंभ के पश्चात उपनयन एवं समावर्तन का विधान एक ही यज्ञोपवीत संस्कार में है। अत: उपयोगी संस्कारों में पुंसवन, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, विद्यारंभ संस्कार युवावस्था के पूर्व के हैं। जन्मकाल से लेकर युवावस्था तक पहुँचते समय छहों संस्कार महत्त्वपूर्ण मोड़ पर लगाए गए दिशा निर्देश पट्टिका के समान हैं। यह संस्कार-प्रक्रिया का प्रथम भाग अथवा पूर्वार्द्ध है। उत्तरार्द्ध में विवाह, वानप्रस्थ, अंत्येष्टि तथा श्राद्धतर्पण महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें पारिवारिक सुख-शांति से लेकर मृत्यु जैसी संवेदनापूर्ण स्थिति में मानसिक संतुलन बिठाए रखने का महत्त्वपूर्ण अभ्यास सम्मिलित है। जन्मदिवस एवं विवाहदिवस संस्कार व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में आत्मसमीक्षा करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनके माध्यम से व्यक्तिगत एवं दांपत्य जीवन में उगने वाले खरपतवारों की सफाई वर्ष में एक बार की जाती है और नया उत्साह एवं उमंग के वातावरण में भविष्य को उज्ज्वल बनाने का संकल्प किया जाता है। युगानुकूल परिस्थितियों में ये दोनों ही संस्कार अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

हमारी प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगन-चुंबी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला था, उनमें एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की संस्कार

पद्धति को भी माना जा सकता है। यह पद्धति सूक्ष्म अध्यात्म विज्ञान की अति प्रेरणाप्रद प्रक्रिया पर अवलंबित है। वेद मंत्रों के सस्वर उच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि-तरंगें, यज्ञीय ऊष्मा के साथ संबद्ध होकर एक अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। जो भी व्यक्ति इस वातावरण में होते हैं या जिनके लिए भी उस पुण्य-प्रक्रिया का प्रयोग होता है, वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण-कर्म-स्वभाव आदि की अनेक विशेषताएँ प्रस्फुटित होती हैं। संस्कारों की प्रक्रिया एक ऐसी आध्यात्मिक उपचार पद्धति है, जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है। परिवार को संस्कारवान बनाने की, कौटुंबिक जीवन को सुविकसित बनाने की एक मनोविज्ञानसम्मत एवं धर्मानुमोदित प्रक्रिया को संस्कारपद्धति कहा जाता है। हर्षोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्निदेव की उपस्थिति, धर्म-भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन-संबंधियों की उपस्थिति, पुरोहितों द्वारा कराया हुआ धर्मकृत्य ये सब मिल-जुलकर संस्कार से संबंधित व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं।

संस्कार के समय जो प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं, जो प्रक्रियाएँ संपन्न कराई जाती हैं, वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती है। संस्कारों के द्वारा अंतर्मन पर ऐसी छाप डाली जाती है, जो किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत, सुविकसित, सौजन्ययुक्त एवं कर्त्तव्यपरायण बनाने में समर्थ हो सके। ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर इस पुण्य-प्रक्रिया का निर्माण किया है। यह जितनी प्रभावशाली पूर्वकाल में थी, उतनी ही आज भी है; यदि उसे ठीक ढंग से उचित व्यवस्था के साथ, उपयुक्त वातावरण में संपन्न किया जाए। भारतीय संस्कृति का यह उपादान मनुष्य को महामानव बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। □

आवश्यक सूचना

कोरोना वायरस प्रकोप के कारण गायत्री तपोभूमि, मथुरा में चलने वाले नवरात्र तथा अन्य सभी सत्र, अगली सूचना तक के लिए स्थगित कर दिए गए हैं।(नौ दिवसीय अनुष्ठान शिविर, माता सरस्वती शिविर, प्राणवान कार्यकर्त्ता शिविर आदि)।

राम नवमी 2 अप्रैल, 2020 को प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र का जो शुभारंभ होना था, उसे भी अगली सूचना तक के लिए स्थगित कर दिया गया है। इससे आपको हुई असुविधा के लिए हमें खेद है।

समर्पण भाव : सफल गृहस्थ जीवन का आधार

नारी निस्संदेह समर्पण और त्याग की प्रतिमा है। यह समर्पण उसकी दुर्बलता नहीं, गरिमा है। विचारशील मनस्वियों ने इस गरिमा को सदा समझा है, इसीलिए नारी की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है, किंतु समर्पण की महत्ता और सार्थकता तभी हो; जब वह विवेकपूर्ण हो। आत्महीनता के भाव से किया गया समर्पण दास्य-भाव कहलाएगा। समर्पण और गुलामी के अंतर को सदा स्मरण रखना चाहिए। समर्पण सदा श्रेष्ठता के प्रति होता है। इससे मन में आस्था एवं उत्साह का भाव स्थिर व दृढ़ होता है। दासता किसी-न-किसी रूप में अनौचित्य को बढ़ाती है। उसमें विवशता की वेदना रहती है; समर्पण का स्वाभिमान भरा उल्लास आनंद नहीं।

विवेकपूर्ण समर्पण के लिए समर्थ व्यक्तित्व आवश्यक है। जो लोग नारी को दलित, अविकसित रखकर उसे समर्पण की सीख देते हैं, वे समर्पण का अर्थ ही नहीं समझते। जो मर्मज्ञ इस उच्च आदर्श की गरिमा समझते थे; उन्होंने नीति-निर्धारण के समय नारी के स्वाभिमान और उत्कृष्टता को अक्षुण्ण रखने का सदा ध्यान रखा तथा उसे गृह व्यवस्थापिका और परिवार-संचालिका की प्रतिष्ठा प्रदान की।

एक अन्य तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है। किसी उच्च आदर्श, महान लक्ष्य के प्रति समर्पण होता है। नारी का समर्पण—पतिव्रत धर्म, चारित्रिक श्रेष्ठता, प्रेम और सेवाभाव के आदर्शों के प्रति होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि समर्पण पुरुष के शरीर या गुण-दोषमय व्यक्तित्व के प्रति होना चाहिए। नारी की आंतरिक संरचना को ध्यान में रखते हुए उसके स्वाभाविक समर्पण-भाव की सराहना की गई है। किंतु इस समर्पण में गरिमा तभी है; जब वह उत्कृष्टता के प्रति ही हो।

पति के समर्पण-भाव का अर्थ पत्नी के प्रति यौन-जीवन में निष्ठा तो है ही, किंतु इतना ही पर्याप्त नहीं। उसकी संवेदनाओं-भावनाओं से तादात्म्य की अनुभूति भी इसका आवश्यक अंग है। शील का संबंध मात्र यौन-जीवन से नहीं; संपूर्ण व्यक्तित्व से है। जो लाभ स्त्रियों के शीलसंपन्न होने से प्राप्त होता है, वही पुरुषों के भी शीलवान होने से मिलेगा। नर-नारी, दोनों जीवन-विकास के समान उत्तरदायित्व लेकर धरती पर आते हैं। शील और सच्चारित्र्य दोनों के व्यक्तित्व विकास के लिए समान रूप से अनिवार्य है। जो कर्त्तव्य स्त्री के लिए है, वही पुरुष के लिए भी। कार्यक्षेत्र में भिन्नता तो पुरुष-पुरुष के बीच भी होती ही है, किंतु कर्त्तव्यनिष्ठा की मूल भावना तथा मर्यादाएँ सभी के लिए समान हैं।

आत्मविकास और पारिवारिक जीवन की सुख-शांति, दोनों के लिए स्त्री की ही तरह पुरुष में चारित्रिक दृढ़ता की आवश्यकता है। प्रेम तभी स्थायी रह सकता है, जब दोनों का अंत:करण शुद्ध हो और कोई भी नाटक न करता हो। घर में पत्नी से निष्ठा की आकांक्षा रखना और बाहर स्वेच्छाचार के फेर में रहना, प्रेम को वास्तविक नहीं रहने दे सकता। जहाँ ऐसी दोहरी मानसिकता और बनावटीपन है; वहाँ आत्मीयता का सूत्र निश्चय ही खंडित होता रहेगा। अकेली धर्मपत्नी का शील और सदाचरण, विनम्रता और सेवाभाव, पारिवारिक जीवन को सुव्यवस्थित नहीं रख सकते। स्त्री पुरुष के पौरुष, श्रम और संरक्षण के लिए उसकी कृतज्ञ होती है, तो पुरुष को नारी की मूक-सेवा, अक्षय स्नेह और पारिवारिक सुव्यवस्था का भार ढोते रहने के लिए और अधिक कृतज्ञ, विनम्र तथा उदार होना चाहिए। नारी को भी पुरुष के आत्मसमर्पण की उतनी ही अभिलाषा रहती है, जितनी पुरुष को नारी के समर्पण की। जिस तरह पातिव्रत्य का इतना भर अर्थ कोई नहीं स्वीकार कर पाता कि पत्नी काम-सदाचार तक सीमित रहे, फिर चाहे दिनभर

लड़े-झगड़े, कटु बोले, क्रुद्ध हो; उसी तरह पुरुष के भी पत्नीव्रत का अर्थ पत्नी को पर्याप्त सम्मान देना, उसकी भावनाओं का आदर करना तथा ध्यान रखना होता है। पुरुष, परिवार की कम ही आवश्यकताएँ पूरी करते हैं, नारी तो शेष सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर खपती रहती है। अत: पुरुष को हीन अहंमन्यता से मुक्त होना चाहिए। यदि परिवार में स्त्री व पुरुष की प्रतिष्ठा असमान हुई तो इससे गृहस्थी की गाड़ी ठीक से नहीं चल पाती, लड़खड़ाती रहती है।

घर में सहिष्णुता पत्नी के लिए जितनी आवश्यक है, पति के लिए उससे भी अधिक आवश्यक है; क्योंकि नारी शारीरिक दृष्टि से उससे दुर्बल होती है और जो अधिक सक्षम है, उसे ही अधिक सहिष्णु होना चाहिए। पत्नी नम्रतापूर्वक बात करे, बाहर से पति के घर आने पर कुशलक्षेम पूछे, तो पति को भी घर-संबंधी उसकी कठिनाइयाँ इतनी ही विनम्रता से पूछना चाहिए।

विवाहित जीवन शरीर और हृदय के मिलन से तुष्ट, पुष्ट और विकसित होता है। यह मिलन उभयपक्षीय निश्छलता से ही संभव है। इस मिलन का स्वरूप मात्र शारीरिक रहा, तो उससे अंतत: थकान और अतृप्ति ही मिलने वाली है। वैचारिक तथा भावनात्मक एकात्मता के प्रबल प्रयास की अंतर्मंथन की क्रिया से ही हार्दिक प्रेम और सहानुभूति का नवनीत निकल सकेगा। सभी सफल दंपतियों का एक ही मत है कि वह हार्दिक प्रेम ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ होता जाता है; भोग की व्यग्रता त्यों-त्यों घटती जाती है और आत्मीयता का अधिक गहरा आधार मन-बुद्धि में स्पष्ट होता जाता है। प्रयत्न इसी हार्दिक मिलन के लिए किए जाने की आवश्यकता होती है। उसी में पुरुषार्थ और गरिमा भी है। भला शारीरिक मिलन भी किसी प्रयत्न की अपेक्षा करता है ? शरीर की वृत्तियाँ तो स्वयं ही इतनी प्रबल हैं कि उस हेतु अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आवश्यकता वैचारिक तथा भावनात्मक मिलन के प्रयासों की होती है। उसी में मिलन का आनंद है।

नारी तो पति को अपना हृदय देने के लिए तैयार हो जाती है। आवश्यकता पुरुष के भी वैसा ही तत्पर होने की रहती है। विनम्र, मधुर व्यवहार, भावनाओं और सुविधाओं का ध्यान तथा सम्मान, पत्नी के जीवन को एक अपूर्व सुख से भर देते हैं। वैवाहिक जीवन के प्रारंभ में तो प्राय: सभी शिक्षित पुरुष ऐसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, किंतु कुछ ही दिनों बाद नारी को दासी मानने की दूषित सामंती वृत्ति उन्हें भी प्रभावित करने लगती है और वे अपने कर्त्तव्य से च्युत होने लगते हैं। पत्नी फिर पति द्वारा वैसे ही उमड़ते हुए हृदय के साथ व्यवहार किए जाने की प्रतीक्षा ही करती रहती है। वे उमंगें फिर उसे पति में नहीं दिखाई पड़तीं। उसके भीतर-ही-भीतर काँटा करकता रहता है। वेदना उसे मथने लगती है। पति की उपेक्षा उसके जीवन का तो आनंद ही छीन लेती है और पति को अपनी व्यस्तता में पत्नी से अपेक्षाएँ पालते रहने से ही अवकाश नहीं मिलता। यह निष्ठा-हीनता है। आवश्यकता उस हार्दिक उमंग को स्थायी बनाने की है। ऐसा कृत्रिम रूप में किया जाना संभव नहीं है। जब तक मन में पत्नी के प्रति समर्पण की, आत्मदान की भावना नहीं है। उमंग-उल्लास व्यवहार में टिके नहीं रह सकते। प्रत्येक नारी में पैनी अंतर्दृष्टि होती है। परिवर्तित मन:स्थिति की झाँकी उसे मिल जाती है और गहरी टीस से उसका हृदय बिलख उठता है। इसीलिए जिन लोगों में चरित्र और व्यवहार की समरसता तथा अविच्छिन्नता नहीं है; जिनमें शील और निष्ठा का अभाव है, वे पुरुष दांपत्य जीवन प्रारंभ करने के पात्र नहीं। उन्हें नारी पर अन्याय करने की यह धृष्टता विवाह के नाम पर नहीं करनी चाहिए कि प्रारंभ में तो उसके बिना मन को शांति ही न मिलती हुई बताएँ और जब उस कोमल संवेदनामूर्ति में आत्मदान की भावना गहराई तक जड़ जमा चुकी हो; तब उन्हें अपने ही अहं के खोल से झाँकने की फुरसत न मिले और अपनी कार्य-व्यस्तता को इतना बढ़ा-चढ़ाकर आँकें कि घर में खट रही पत्नी के श्रम का मूल्य ही समझ में न आ सके। विवाह के कुछ ही दिनों बाद जो पति यह मानने लगे कि उसे अपना अवकाश का समय घर में व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं है, पत्नी से विनोदपूर्ण चर्चा की कोई जरूरत नहीं है, उसके मनोरंजन के लिए स्वयं चिंता करने की क्या आवश्यकता, पैसे तो सब उसे

ही सौंप देता हूँ। वह काम-सदाचार का पालन करते हुए भी अन्यायी कहा जाएगा। जिसे पत्नी की भावनात्मक अपेक्षाएँ समझने का समय नहीं, उसे वैवाहिक जीवन का प्रारंभ करने की इच्छा व पहल भी नहीं करनी चाहिए।

पति-पत्नी के बीच समर्पण सदा उभयपक्षीय ही हो सकता है। अपने अहंकेंद्रित दुराग्रह से नए युग में पुरुष को मुक्त होना ही चाहिए।

दांपत्य जीवन मात्र समता की भावना से ही सफल व सार्थक हो सकता है। पत्नी के सभी कार्यों में पति का सहयोग भी आवश्यक है। घरेलू कार्यों में हाथ बँटाने का भी प्रत्येक पति को अनिवार्य रूप से समय निकालना चाहिए। पत्नी के विश्राम की चिंता भी पति को ही करनी चाहिए। आज तो स्थिति सर्वथा भिन्न है। पति अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से पत्नी को निरंतर त्रस्त रखते हैं। रात देर तक साथियों से व्यर्थ गप-शप, अकेले ही मनोरंजन आदि में उलझे रहकर देर रात गए घर लौटते हैं, वह भी इस मुद्रा में मानो रण से जूझकर आ रहे हैं। दिनभर के कामों से थकी-माँदी पत्नी बाट जोहती बैठी रहती है। न समय पर खा पाती और न सो पाती है। इन विचित्र हरकतों को उद्दंडतापूर्ण मूर्खता ही कहा जा सकता है। ये तो समाप्त होने ही चाहिए। साथ ही घर के कार्यों में सच्चे सहयोगी की भूमिका निभाना चाहिए। यदि किसी कारणवश पत्नी भोजन नहीं बना सकती, तो उस दिन पति को उसी प्रेमपूर्ण भावना से भोजन बनाना चाहिए, जिसे नित्य पत्नी बनाती है।

सच्चा सौहार्द रहे तो पति-पत्नी की रुचियों में सामंजस्य तो हो ही सकता है; दोनों की अधिकांश रुचियाँ समान भी हो सकती हैं। पत्नी के स्वास्थ्य, विश्राम और मनोरंजन का ही नहीं, विकास का भी ध्यान पति को रखना चाहिए। जो लोग अकेले अपने ही विकास के इच्छुक हैं, उन्हें इस हेतु एक माध्यम या सहायक के रूप में पत्नी को पाने की इच्छा से विवाह नहीं करना चाहिए। पत्नी के श्रम और सेवाकार्यों का लाभ उठाकर मात्र अपना आत्मविकास करना भी नारी का शोषण है। पत्नी के आत्मविकास के लिए पति को भी अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं के एक अंश का उत्सर्ग करना चाहिए। दोनों का साथ-साथ आत्मविकास होता चले, तभी दांपत्य जीवन की सार्थकता है।

ऋषि धौम्य के आश्रम में अनेक छात्र पढ़ते थे। वे उन्हें पूरी लगन से पढ़ाते, साथ ही देखते कि छात्रों में सद्गुणों की वृद्धि हुई या नहीं, इसकी परीक्षा भी लेते रहते थे।

एक दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। गुरु ने अपने छात्र आरुणि से कहा— ''बेटा! खेत में मेंड़ टूट जाने से पानी बाहर निकला जा रहा है। तुम जाकर मेंड़ बाँध आओ।'' छात्र तत्काल उठ खड़ा हुआ और खेत की ओर चल दिया।

पानी का बहाव तेज था। छात्र से रुका नहीं। कोई उपाय न देख आरुणि उस स्थान पर स्वयं लेट गया। इस प्रकार पानी रोके रहने में उसे सफलता मिल गई।

बहुत रात बीत जाने पर भी जब छात्र न लौटा तो धौम्य को चिंता हुई और वे खेत पर उसे ढूँढ़ने पहुँचे। देखा तो छात्र पानी को रोके मेंड़ के पास पड़ा है। देखते ही गुरु की छाती भर आई। उनने उठाकर शिष्य को गले लगा लिया। सच्ची शिक्षा अक्षरज्ञान में नहीं सद्गुणों से पूर्ण श्रेष्ठ व्यक्तित्व में ही होती है।

वस्तुतः पति और पत्नी दोनों मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। जीवनयात्रा इस सामूहिक व्यक्तित्व की संयुक्त जिम्मेदारी है। इस संयुक्त उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए दोनों को समर्पण और आत्मदान करना होगा। □

बच्चों में छिपी होती है—असाधारण प्रतिभा

अभिभावकों को अक्सर यह शिकायत रहती है कि बच्चा बड़ा शरारती है; उसे सुधारा कैसे जाए? बालक की उद्दंडता माता-पिता के लिए चिंता का विषय हो सकती है, पर आधुनिक अनुसंधानों से इस संबंध में जो तथ्य ज्ञात हुए हैं; उसके अनुसार अब ऐसे बच्चे से चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। यदि वह शरारती है, तो यह माना जा सकता है कि वह मेधावी होगा और किसी-न-किसी क्षेत्र में असाधारण प्रतिभासंपन्न भी। यह बात और है कि उसकी उस प्रतिभा को पहचान पाना अभिभावक एवं अध्यापक के लिए सरल न हो, पर शोध-निष्कर्ष यही बताते हैं कि ऐसे बालक मेधा के धनी होते हैं।

कई प्रकरणों में देखा गया है कि ऐसे छात्र पढ़ाई-लिखाई के क्षेत्र में तो सामान्य होते हैं, पर अन्य क्षेत्रों में असाधारण साबित होते हैं। ऐसे ही एक वैज्ञानिक थे—आस्ट्रेलिया के डोनाल्ड फिशरमैन। बाल्यकाल में उनके अशिष्ट और उद्दंड आचरण से परेशान होकर स्कूल के प्राचार्य ने पहले तो माँ-बाप को कई चेतावनियाँ दीं कि डोनाल्ड पढ़ने के बजाय मौजमस्ती और मार-पीट में अधिक संलग्न रहता है। स्कूल में जो कुछ पढ़ाया जाता है, उस पर ध्यान नहीं देता। उत्तम होता, यदि आप स्वयं उसे समझाएँ। संभव है कि इससे पढ़ाई में उसकी रुचि पैदा हो और वह नियमित रूप से स्कूल आने लगे। पढ़ने से उसकी बुद्धि विकसित होगी, तर्कशक्ति पैदा होगी और असामान्य नहीं, तो सामान्य स्तर के छात्रों की स्थिति में शायद आ जाए। आचार्य के इस आशय का शिकायतपत्र जब पिता के पास आया, तो वह दंग रह गए। सोचने लगे कि जो बालक दफ्ती के टुकड़ों से हवाई जहाज का मॉडल और टेलीफोन जैसे यंत्र की प्रतिकृति बना सकता है, वह बुद्धिहीन कैसे होगा? अवश्य ही अध्यापकों के बीच बालक के प्रति कोई-न-कोई भ्रम पनप रहा है, जिसे वे समझ नहीं रहे हैं।

बालक से जब इस संदर्भ में पूछताछ की गई, तो उसने इसे स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि विद्यालय जाने में उसकी कोई रुचि नहीं, न ही उनके विषयों के प्रति उसका कोई आकर्षण है, जिसकी शिक्षा वहाँ दी जाती है। वस्तुत: मैं कुछ बनना और अनुसंधान करना चाहता हूँ। स्कूल में न तो इस बारे में कुछ बताया जाता है और न करने के लिए अवसर दिया जाता है। अत: विद्यालय जाने की तुलना में घर रहकर ही कुछ यांत्रिक निर्माण करूँगा। पाठशाला में जितना जानना-सीखना था वह सब सीख लिया, अब उसकी आवश्यकता नहीं।

पुत्र के इस आग्रह के आगे माता-पिता को झुकना पड़ा। बेटे ने जिन-जिन चीजों की माँग की थी, उन्हें जुटा दिया गया। इस प्रकार डोनाल्ड की प्रयोगशाला स्थापित हो गई। प्रतिदिन दो-तीन घंटे माता-पिता से औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर, शेष समय अपनी अनुसंधानशाला में बिताता। उसके आरंभिक कार्यों को देखकर माँ-बाप भी प्रोत्साहित करते। इस प्रकार धीरे-धीरे वह छोटे-छोटे यंत्र-उपकरण बनाने लगा। बाद में चलकर उसने अनेक ऐसे उपकरण बनाए, जो विज्ञान के लिए वरदान सिद्ध हुए। आज सभी जानते हैं कि तब यदि डोनाल्ड को प्रोत्साहित नहीं किया जाता, उसकी रुचि की उपेक्षा कर दी गई होती, तो विज्ञान-जगत एक प्रतिभावान विज्ञानवेत्ता से वंचित रह जाता।

यह सत्य है कि प्रतिभा की परख नहीं होने के कारण विश्व कई ऐसी विभूतियों को खो देता है, जिनकी यदि समय रहते पहचान कर ली गई होती, तो दुनिया का इतिहास आज कुछ और ही होता। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर रूस में स्थान-स्थान पर ऐसे स्कूलों की स्थापना की गई है, जहाँ अति आरंभ काल में ही बच्चों की रुचि और मनोवृत्ति के बारे में जाना जा सके। इन पाठशालाओं को विद्यालय की अपेक्षा नौनिहालों का कौतुकस्थल कहना अधिक

उपयुक्त होगा; क्योंकि यहाँ उन्हें कुछ पढ़ाया-सिखाया नहीं जाता, वरन एक ऐसे कमरे में छोड़ दिया जाता है, जहाँ भाँति-भाँति के उपकरण यथा—कागज, छोटे लौह यंत्र, हल-बैल का नन्हा मॉडल, स्वचालित चलते-फिरते खिलौने, नृत्य करती गुड़ियाएँ एवं अन्य ऐसे ही दूसरे छोटे उपकरण रखे होते हैं। बालक जिनसे छेड़छाड़ करना अधिक पसंद करता है और जिसकी ओर ज्यादा आकर्षित होता है, उसमें उसकी मूलभूत रुचि मान ली जाती है और बड़े होने पर उसी क्षेत्र की शिक्षा दी जाती है। इस क्रम में अब तक के परिणाम भी उत्साहवर्द्धक रहे हैं। इस विलक्षण तरीके से प्रतिभा जाँच से गुजरे बालक बाद में इसी क्षेत्र के दूसरे वैसे बालकों से अधिक प्रवीण-पारंगत देखे गए, जो इस पड़ताल से नहीं गुजरे थे। इस आशय का विस्तृत विवरण सन् 1991 में रूस में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'स्पूतनिक' ने निकाला था।

मनोवैज्ञानिकों ने शरारती बालकों में शोध के दौरान कई विशिष्टताएँ देखी हैं; इनमें से प्रथम है—उनकी तीक्ष्ण स्मरणशक्ति। उनके अनुसार ऐसे छात्र किसी बात को एक बार पढ़-सुन लेते हैं, तो दोबारा उसे याद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त उनकी बातें वजनदार और सारगर्भित होती हैं। जो कुछ वे बोलते हैं; वह तर्क एवं तथ्यपूर्ण होता है। उनमें जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है; कल्पना की शक्ति होती है; भावाभिव्यंजना की क्षमता एवं नेतृत्व की योग्यता होती है। वे अनेक ऐसे प्रश्न कर सकते हैं; जिनका सही-सही जवाब दे पाना बड़े-बड़ों के लिए कठिन हो सकता है। वे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व भावनात्मक क्षेत्र में सामान्य बालकों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ तथा सफल होते हैं। इसके अतिरिक्त तीव्र मेधायुक्त भी होते हैं।

वस्तुतः मेधा अथवा बुद्धि से अर्थ अब तक प्रायः उच्च बुद्धिलब्धि (आई. क्यू.) से लगाया जाता रहा है और लंबे समय से वह मेधावी का पर्याय बना रहा, पर मनोविज्ञानी बताते हैं कि 'मेधावी' एक बहुअर्थी शब्द है; जिसका मतलब सिर्फ शैक्षणिक योग्यता तक ही सीमित नहीं माना जाना चाहिए। उनके अनुसार एक अनपढ़ टेक्नीशियन या मशीनमैन भी मेधावी हो सकता है। यह बात और है कि उसकी मेधा यांत्रिक क्षेत्र की दिशा में विकसित हुई। इसी प्रकार दूसरी दिशा में रुचि रखने वाले लोग वाणिज्य, सिलाई-कढ़ाई, गायन-वादन, नृत्य-अभिनय, गृहकार्य, बातचीत, व्यवहारकुशलता जैसी दूसरी विधाओं में पारंगत हो सकते हैं। शोध के दौरान देखा भी गया है कि जो बालक पढ़ाई में असफल होते हैं; वे कई अन्य क्षेत्रों में अद्भुत मेधा का प्रदर्शन करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में इन्हें मेधावी कहना अनुपयुक्त और अनुचित न होगा। अनेक अवसरों पर ऐसे प्रकरण भी सामने आए हैं, जिनमें बालक को मूर्ख कहा जाए या मेधावी; ऐसी असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती है; कारण कि ऐसे मामलों में जब बालक से सामान्य जोड़-घटाव करने को कहा जाता है, तो वह बगलें झाँकने लगता है, किंतु उसकी आयु और स्तर के हिसाब से अनेक गुने कठिन सवाल पूछे जाने पर वह उनका उत्तर बड़ी सरलता से देता है। ऐसा ही एक बालक कुछ वर्ष पूर्व पेरिस में प्रकाश में आया है। लॉरेन्स नामक इस लड़के की उम्र तब पंद्रह वर्ष थी। अपने से उच्च कक्षाओं के प्रश्न वह आसानी से हल कर लेता था, पर सामान्य सवाल पूछे जाने पर उसे पसीना आने लगता था। इसी कारण लोग उसे 'मेधावी मूर्ख' के नाम से पुकारने लगे।

यह सत्य है कि हर बालक में अलग-अलग प्रतिभा के लिए जिम्मेदार मस्तिष्कीय भाग समान रूप से विकसित नहीं होते। किसी का कला वाला भाग, किसी का साहित्य वाला, किसी का संगीत वाला, तो किसी का गायन वाला हिस्सा विकसित होता है। इतने पर भी उन्हें होनहार न कहा जाना 'मेधा' शब्द के अर्थ को सीमित करने जैसा होगा। वस्तुतः यह शब्द संस्कृत के 'मिद्' धातु शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है—विद्युत। बिजली तो संपूर्ण काया में विद्यमान है, पर वही विद्युत विशिष्ट अवस्था में जब मस्तिष्क के किन्हीं भागों को विशेष रूप से प्रभावित-उत्तेजित करने लगती है, तो इससे व्यक्ति में संबद्ध विभूतियों का जागरण होने लगता है और मनुष्य अन्य क्षेत्रों में साधारण जैसा दिखलाई पड़ने पर भी दूसरे क्षेत्रों में अद्वितीय स्तर का परिचय देता है। इस दृष्टि से मेधावी की परिधि में वे सभी लोग आते हैं, जो पढ़ाई-लिखाई में

फिसड्डी होते हुए भी अन्य किसी भी विधा में तीव्र बुद्धिसंपन्न हैं।

संतान की स्थिति में यह सुनिश्चित करना अभिभावक का कर्त्तव्य है कि उसमें किसी प्रकार की क्षमता-योग्यता निहित है। यदि सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करते रहा जाए, तो यह पता लगाना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं कि बच्चे का रुझान किस ओर है ? इतना विदित हो जाने के उपरांत उसी दिशा में उन्हें प्रेरित-प्रोत्साहित करके प्रतिभाशाली बनाया जा सकता है। यह भी एक सत्य है कि अनेकानेक महापुरुष बाल्यकाल में बहुत ही उद्दंड थे, पर अध्यात्म की ऊँचाइयों को वे छू सके; हमें हर किसी बालक की मस्तिष्कीय, चेतनात्मक मेधा के विकास का प्रयास करना चाहिए। □

ज्ञातव्य

गायत्री तपोभूमि, मथुरा के भिन्न-भिन्न मदों के लिए धनराशि भेजते समय कृपया निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान दें।

1. पुण्यार्थ दान : युग निर्माण विद्यालय, पं० श्रीराम शर्मा आचार्य पारमार्थिक चिकित्सालय में नि:शुल्क चिकित्सा शिविर, अन्नक्षेत्र (भोजन-व्यवस्था), आपदा निवारण, चिकित्सा सुविधा एवं अन्य पारमार्थिक प्रयोजनों के लिए। (दान की राशि पर आयकर अधिनियम की धारा 80 G के अंतर्गत छूट प्राप्त है।)

Bank Account-Yug Nirman Yojana Trust **IOB Branch :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura

IFSCODE - IOBA-0001441 **A/C No. -** 144102000000002 **PAN-**AAATY 0086 E

2. धर्मार्थ दान गायत्री मंदिर : दैनिक व्यवस्था, अखण्ड दीप, अनुष्ठान, अन्नक्षेत्र (भोजन-व्यवस्था), गायत्री मंदिर जीर्णोद्धार एवं पुनर्निर्माण के लिए।

Bank Account-Gayatri Mandir Trust **IOB Branch :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura

A/C No. - 144102000000003 **IFSCODE -** IOBA-0001441 **PAN-** AAATG 0704 D

3. गोशाला दान : Bank A/C- Yug Nirman Yojana Vistar Trust **IOB :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura

IFSCODE - IOBA-0001441 **A/C No. -** 144102000002051 **PAN -** AAATY 2059 F

4. युग निर्माण योजना (हिंदी) मासिक, युग शक्ति गायत्री (गुजराती) मासिक, साहित्य, हवन सामग्री, प्रचार सामग्री, पुस्तक मेला के लिए।

A/C- Yug Nirman Yojana Vistar Trust (Prachar Khata) **IOB :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura

IFSCODE - IOBA-0001441 **A/C No. -** 144102000002021 **PAN -** AAATY 2059 F

(1) धनराशि ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा पूर्ण विवरण के साथ भेजें। बैंक में यदि राशि जमा करते हैं तो बैंक जमा स्लिप की छायाप्रति तथा UTR नंबर के साथ संबंधित विषय का पूरे विवरण के साथ पत्र लिखना चाहिए या बैंक स्लिप को स्कैन करके ई-मेल से पूरी जानकारी भेजें; अन्यथा उस राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

(2) विदेशी राशि केवल ड्राफ्ट द्वारा स्वीकार होगी खाते में जमा न करें।

विचारों की सृजनात्मक शक्ति
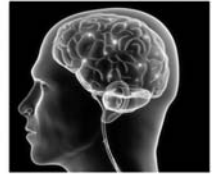
विचारों की उत्पत्ति मस्तिष्क से होती है। जो स्तर मनुष्य के मस्तिष्क का होता है, उसी स्तर के विचार उत्पन्न होते हैं। मस्तिष्क यदि स्वस्थ तथा संतुलित है, तो विचार भी सुंदर एवं सृजनात्मक ही उत्पन्न होंगे और यदि मस्तिष्क अस्वस्थ अथवा असंतुलित है, तो उसी के अनुसार विचारों का सृजन भी अस्वस्थ तथा असंतुलित ही होगा।

अस्वस्थ तथा असंतुलित विचार पागलपन का लक्षण है। साधन और साध्य, उचित और अनुचित, पाप और पुण्य, अच्छे और बुरे के बीच जो सही निर्णय न कर सके; जो कर्त्तव्य को छोड़कर अकरणीय काम करे; सत्य को छोड़कर असत्य का आश्रय ले, वह मनुष्य किसी पागल से कम नहीं माना जा सकता। भले ही वह पागलखाने में बंद उन लोगों की तरह न हो, जो नंग-धड़ंग, रोते-चिल्लाते और मार-पीट करते हैं। भय, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि की अधिकता भी मनुष्य के पागलपन की निशानी है। जिस प्रकार पागल कहे जाने वाले लोग समाज अथवा अपने लिए हानिकारक होते हैं; वैसे ही इन मनोविकारों से ग्रस्त लोग भी अपने अथवा अपने समाज के लिए भयानक होते हैं।

भयग्रस्त व्यक्ति यदि शीघ्र किसी को हानि नहीं पहुँचाते, तो अपना सर्वनाश कर लेते हैं। भीरुवृत्ति वाला व्यक्ति न तो समाज में बढ़कर कोई साहस दिखला सकता है और न किसी उन्नति की ओर बढ़ सकता है। वह अपनी इस दुर्बलता से त्रस्त होकर लुकता-छिपता रहता है और इस प्रकार अपनी उस आत्मा का हनन करता है, जो मानव जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। क्रोधी व्यक्ति जब अपने इस विकार के चंगुल में फँस जाता है; तब मनुष्य से न जाने क्या बन जाता है। क्रोध के आवेग से उसकी मुद्राएँ, भंगिमाएँ; यहाँ तक कि उसकी मुखाकृति भी बुरी तरह विकृत हो जाती है। क्रोधी व्यक्ति के हृदय में विकार की भयानक आग जलती रहती है, जिससे उन्मत्त होकर वह बड़े भयंकर अपराध तक कर डालता है। क्रोध में किसी को मार डालना, अपने को जला डालना, समाज को हानि पहुँचाना, अपनी शांति भंग कर लेना अथवा भयानक होकर व्यवहार करना पागलपन के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ?

लोभग्रस्त मनुष्य तो पिशाच के समान हो जाता है। अपनी लोभवृत्ति की तुष्टि के लिए वह बुद्धि और विवेक से अंधा हो जाता है। असत्य, बेईमानी, छल-कपट, विश्वासघात आदि की सारी रीतियाँ, एक लोभी व्यक्ति के लिए सहज बातें होती हैं।

अहंकार एक ऐसी वृत्ति है, जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सारे विकार उत्पन्न होते हैं। अहंकार का दोष ही मनुष्य-को-मनुष्य का शत्रु बना देता है। अनुशासनहीनता, धृष्टता और अविनय का व्यवहार करने में अहंकारी को गौरव अनुभव होता है। सम्माननीय को आदर न देना, पूजनीय की पूजा न करना और गुरुता का महत्त्व स्वीकार न करना, अहंकारी व्यक्ति के स्वभाव का एक प्रधान अंग होता है।

अनियंत्रित रीति से उठने वाले मनुष्य के सारे मनोविकार एक प्रकार के मानस रोग ही होते हैं। जिनकी उत्पत्ति का केंद्र मनुष्य का मस्तिष्क ही होता है। यदि मनुष्य का मस्तिष्क सही दिशा में काम कर रहा हो, तो अच्छे और स्वस्थ विचार ही उत्पन्न होंगे। गलत दिशा में सक्रिय मस्तिष्क से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह सुंदर, स्वस्थ और उत्पादक विचारों को जन्म देगा।

परमात्मा की ओर से मनुष्य को जो संपदाएँ मिली हैं; उनमें मस्तिष्क सबसे अधिक मूल्यवान तथा महत्त्वपूर्ण संपदा है। उचित रूप से प्रयोग किए जाने पर यह बड़ी महान सृजनात्मक शक्ति के रूप में सिद्ध होता है। अंतर्द्वंद्वों, द्विधाओं, संदेहों, भयों तथा कुभावनाओं के प्रभाव से इसकी रक्षा की जानी चाहिए। शरीर, शक्ति और साधन की सुविधा होते हुए भी,

यदि मनुष्य का मस्तिष्क विकृत हो जाए, तो वह संसार का कोई काम करने योग्य नहीं रह जाता। मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसका शरीर नहीं, मस्तिष्क ही होता है। किन्हीं कारणों से पागल हो जाने वाले लोगों के शरीर, उनके अवयव और उनकी शक्ति में कोई कमी नहीं आती, तब भी वे किसी काम के योग्य नहीं रहते। इसका एक ही कारण है; मस्तिष्क का विकृत हो जाना। एकमात्र मस्तिष्क के विकृत हो जाने से उनका स्वस्थ तथा सबल शरीर और उसकी शक्ति किसी काम की नहीं रहती।

मनुष्य के लिए शारीरिक स्वास्थ्य का कम महत्त्व नहीं है। किंतु शारीरिक स्वास्थ्य से कहीं अधिक महत्त्व है, बौद्धिक स्वास्थ्य का। एक बार शरीर यदि रोगी, अस्वस्थ अथवा अशक्त हो जाए, तो भी बुद्धिबल पर अपना काम किसी-न-किसी प्रकार चलाया जा सकता है। किंतु यदि मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो जाए तो स्वस्थ और सबल शरीर भी बेकार हो जाता है। शरीर का उपयोग मस्तिष्क द्वारा ही होता है। एक अकेला मनुष्य मस्तिष्क के आधार पर बड़े-बड़े उद्योगों, नेतृत्वों तथा व्यवस्थाओं को एक स्थान पर बैठा-बैठा चलाता रहता है; जबकि शरीर के आधार पर वह उतना काम नहीं कर सकता।

निश्चय ही मस्तिष्क मनुष्य की महान शक्ति है। इसके आधार पर वह जो भी उन्नति करना चाहे, कर सकता है। किंतु संभव यह तभी होता है, जब मनुष्य का मस्तिष्क उच्च और सृजनात्मक विचारों का उत्पादन करे। कलुषित, कुटिल और ध्वंसक विचारों की उत्पत्ति भी मस्तिष्क से ही होती है। चिंता, उद्वेग, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से युक्त विचार वाले मनुष्य कल्याण संपादन नहीं कर सकते। ये वे ध्वंसात्मक विचार हैं; जिनसे मनुष्य का चरित्र गिर जाता है और वह ऐसे-ऐसे अकरणीय कार्य करने लगता है, जो उसके सर्वनाश के कारण बन जाते हैं। मनुष्य का यह मस्तिष्क ही सृजनात्मक शक्ति के रूप में सिद्ध होता है, जो आशा, उत्साह, पौरुष, धैर्य, त्याग, प्रेम, आनंद आदि के कल्याणकारी विचार उत्पन्न करता है। इस प्रकार के उत्पादक विचार ही मनुष्य को नई प्रेरणा देकर नित्य नई दिशा, नए कर्त्तव्य और नूतन योजनाओं में संलग्न करते हैं।

ईश्वर की देन होने पर मस्तिष्क स्वयं सिद्ध विचार यंत्र नहीं है। इसको कल्याणकारी विचार उत्पन्न करने योग्य बनाने के लिए प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है। विश्वासों, मान्यताओं, कामनाओं तथा संगति आदि का मानव-मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जिसके विचार ऊँचे, मान्यताएँ वास्तविक, कामनाएँ मांगलिक और संगति साधुतापूर्ण होगी, उसका मस्तिष्क सदा स्वस्थ तथा सुफलदायक होगा। जिसके विश्वास संदिग्ध, मान्यताएँ मूढ़, कामनाएँ कुत्सित और संगति निकृष्ट कोटि की होगी; उसका मस्तिष्क शंकाओं, संदेहों, निराशाओं, कुकल्पनाओं और कुत्साओं से भरा रहेगा।

हम मनुष्य हैं, मनुष्य बनें और फिर उसके बाद देवत्व की ओर अग्रसर हों। इसके लिए हमारा प्रधान कर्त्तव्य यह है कि हम अपने विचारतंत्र का निर्माण इस प्रकार से करें कि वह सदा-सर्वदा कल्याणकारी दिशा में ही सक्रिय रहे। कल्याण का निवास परमार्थ के सिवाय और किसी में नहीं है। हम अपना निरीक्षण करें, अपने अंदर झाँकें और खोज करें कि कहीं ऐसी प्रवृत्तियाँ तो हमारे भीतर नहीं छिपी पड़ी हैं, जो हमारे आचार-विचारों को, दूसरों को दुःख देने, सताने और शोषण करने के लिए प्रेरित करती हों।

हो सकता है कि अपरिष्कार के कारण हमारे भीतर इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ हों। यदि हैं तो हमें सत्संग, अध्ययन और चिंतन के द्वारा उन्हें निकाल बाहर करना चाहिए। असद्प्रवृत्तियों के मिट जाने पर हमारा मस्तिष्क साफ-सुथरा होकर सद्विचारों का सृजन करने लगेगा। सद्विचार ही हमारी बहुमूल्य शक्ति है।

जो कुछ प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाता है अथवा पतन में सहायता करता है, वही 'अधर्म' है और जो कुछ हमारे ऊपर उठने तथा द्वंद्वरहित होने में सहायक होता है, वही 'धर्म' है।

उठो ! जागो !! अपना उद्धार आप करो

परमात्मा द्वारा दी हुई शक्तियों पर विश्वास करना ही आत्मविश्वास है। परमपिता ने हमें विवेचना शक्ति दी है, जिसके द्वारा हम अपनी परिस्थितियों की समीक्षा कर सकते हैं। अपनी भूलों, अपनी कमियों का पता लगा सकते हैं। यही नहीं ईश्वरप्रदत्त बुद्धि के द्वारा वर्तमान विषम स्थिति से निकलने के लिए योजना बना सकते हैं, भावनात्मक शक्ति का सदुपयोग करके अपनी मानसिक कमजोरियों का निराकरण करते हुए, एक-एक पद आगे बढ़ाते हुए समुन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ सकते हैं। वस्तुत: शक्तियों और साधनों की कमी नहीं है; जितनी कमी प्राप्त सुविधाओं और शक्तियों के आशावादी दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने की।

स्वामी विवेकानंद जी प्राय: कहा करते थे— ''आत्मविश्वास से बढ़कर मनुष्य का कोई मित्र नहीं। आत्मविश्वास ही भावी उन्नति की प्रथम सीढ़ी है।'' महात्मा गांधी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि आत्मविश्वास ही हमारी जीवननौका को तूफानी सागर में भी खेता है। स्वेट मार्डन ने कहा है— ''आत्मविश्वास की मात्रा हम में जितनी अधिक होगी, उतना ही हमारा संबंध अनंत जीवन और अनंत शक्ति के साथ गहरा होता जाएगा। निस्संदेह हर परिस्थिति में मनुष्य का एकमात्र साथी उसका अपना आपा है। उसकी मन:शक्तियाँ हैं।''

आत्मविश्वास का सीधा-सा अर्थ अपने पर विश्वास करना है। दूसरे से आशा करना, दूसरे पर विश्वास करके पुरुषार्थ छोड़ बैठना, आत्मशक्तियों का अनादर करना है। दूसरे मदद करते हैं, तो अच्छा है, मदद नहीं करते हैं, तो क्या? हमको अपनी मदद खुद करनी है, अपनी टाँगों से ही सब चलते हैं। हमें भी अपनी टाँगों से ही यदि चलना पड़ रहा है, तो इसमें क्या बुराई है? इस प्रकार का दृढ़ निश्चय, निर्धारित कार्यक्रम अथवा योजना के प्रति इस प्रकार का भाव ही आत्मविश्वास कहलाता है।

आत्मविश्वासी अपने को दीन-हीन, अभागा नहीं मानता। वह अपने को परमपिता का पुत्र मानता है। वह अपने को परमपिता का परम कृपापात्र समझता है। वह जलचर, नभचर आदि समस्त प्राणियों से अपने को श्रेष्ठ अनुभव करता है, उसका यह पक्का विश्वास होता है कि समस्त शक्तियों के पुण्य-प्रवाह रूप परमेश्वर मेरे हृदय में नित्य विराजते हैं। अत: मेरा रोम-रोम दिव्य है; क्योंकि महानता के अणु-परमाणु उनमें अनुस्यूत हैं। वह अनुभव करता है कि मैं ईश्वर का अंश हूँ। ईश्वरीय शक्तियों का पुंज हूँ। शरीर के नाश के साथ मैं मरता नहीं। मैं अजर-अमर हूँ। उज्ज्वल कर्मठता ही मेरा सहज स्वभाव है।

उसके ये विश्वास उसमें उत्साह और स्फूर्ति का संचार करते हैं। ऐसे व्यक्ति की बातचीत, ऐसे व्यक्ति के हाव-भाव देखने मात्र से ही दूसरों को प्रभावित करते हैं। इस तरह आत्मविश्वासी अपने जीवन को तो ऊँचा उठाता ही है, दूसरों को भी ऊपर उठने के लिए अनुप्राणित करता है।

आत्मविश्वास मनुष्य के कार्यकलाप, जीवन-व्यवहार आदि में अद्‌भुत सामर्थ्य भर देता है। वह मनुष्य की बिखरी हुई शक्तियों को संगठित करता है। उन्हें एक दिशा में लगाता है। समस्त शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियाँ उसके इशारे पर नाचती हैं। निस्संदेह आत्मविश्वास अपने उद्धार का एक महान संबल है।

हर मनुष्य की अपनी अनोखी समस्याएँ होती हैं। कई बातों में वे दूसरों की उसी प्रकार की समस्याओं से सर्वथा भिन्न होती हैं। जिस प्रकार घायल आदमी ही अपने घाव की पीड़ा को यथार्थ रूप में अनुभव करता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी समस्याओं और उलझनों को अपने आप ही अच्छी तरह जानता है; दूसरा कोई उसको सही-सही नहीं समझ सकता है। अत: जब मनुष्य अपना ध्यान अपनी परेशानियों

और कठिनाइयों के स्वरूप को समझने में लगाता है, जब वह उनके कारणों को खोजने में दत्तचित्त होता है और उनके हल ढूँढ़ने का अपने आप प्रयास करता है, उनके निवारण में लगन और तत्परता के साथ जुट जाता है, तो वह आत्मविश्वासी कहा जाता है; क्योंकि अपनी विषम परिस्थितियों और व्यथाओं का हल अपने आप करना ही आत्मविश्वास है। यह पर आशा का, पराश्रय का विलोम है।

आत्मा स्वयं पूर्ण है और अनंत शक्तियों का भंडार है। इन पर आस्था दृढ़ करना ही आत्मविश्वास का मुख्य लक्ष्य है। आत्मविश्वास से पग-पग पर आशा, सुरक्षा, निर्माण और अदृश्य सहायता का अनुभव अपने को आप मिलता है, जिससे आत्मविश्वास भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

आत्मविश्वास के दृढ़ीकरण के लिए यह आवश्यक होगा कि आप लिए हुए संकल्प पर, निर्धारित लक्ष्य पर सामने पड़े कार्य पर ही अपना ध्यान केंद्रित रखें। जितनी लगन और ईमानदारी के साथ इस दिशा में अग्रसर होंगे, उतनी ही तेजी के साथ आप अपने आत्मविश्वास को प्राणवान बनाएँगे। जिस अनुपात में आप आत्मविश्वास को प्राणवान बनाएँगे; जिस अनुपात में आपकी विपत्तियों का निवारण होगा उसी अनुपात से आपको सुख और शांति, प्रगति और सफलता आप-से-आप मिलती दिखाई देगी। उसी क्रम से अनुकूल परिस्थितियाँ अपनी ओर खिंच-खिंचकर आती हुईं आपको प्रतीत होंगी। ☐

कौरवों और पांडवों की सेनाएँ आमने-सामने आ गईं। शंख बजने लगे, घोड़े खुरों से जमीन खूँदने और हाथी चिंघाड़ने लगे। कुरुक्षेत्र के समरांगण में सर्वनाश की तैयारी पूरी हो चुकी थी। ठीक तभी एक टिटहरी का आर्तनाद गूँज उठा।

दोनों शिविरों के मध्य एक छोटी सी टेकरी थी, उसी की खोह में उसका घोंसला था। उसकी आँखें अपने बच्चों की ओर लगी थीं और कान धनुषों की टंकार पर। उसे चिंता अपने जीवन की नहीं, अपने बच्चों की थी और बिना सहारे के होने पर माता का रोना घोंसले में सुनाई पड़ने लगा। कृष्ण के कानों तक यह पुकार पहुँची। असंख्य वीरों की बलि और युद्ध के भयंकर कोलाहल के बीच भी जिनकी बाँसुरी के स्वर कभी विचलित नहीं हुए थे, उन्हीं कृष्ण को इस टिटहरी के स्वर ने झकझोर डाला। वे दौड़े गए। एक पत्थर उठाकर घोंसले के द्वार पर सहेज दिया और वापस आकर अपना स्थान ग्रहण करते हुए सेनापति से कहा—''महावीर भीम, अब तुम युद्ध का बिगुल बजा सकते हो।''

भगवान बेसहारों का सहारा होते हैं।

संपदा नहीं—सद्गुण कमाएँ

संपदाएँ दूसरों को चमत्कृत करती हैं और अपने पर भार बनकर लदती हैं। विभूतियाँ दूसरों को दिखाई नहीं पड़तीं, पर अपने में आनंद और उल्लास भर देती हैं।

धन, वैभव, पद, बड़प्पन को देखकर दूसरे लोग यह अनुमान लगाते हैं कि जिनके पास ये संपदाएँ हैं, वे बहुत सुखी होते हैं, पर असल में बात ऐसी है नहीं। कोल्हू में बैल को चलते देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह तेल पीता होगा, खली खाता होगा और तेल के व्यापार से लाभ कमाता होगा, तो यह मान्यता सही नहीं है। दूर से देखने पर अक्सर ऐसे ही भ्रम हो जाते हैं। अँधेरी रात में जंगली झाड़ हाथी जैसा लगता है, पर पास जाने पर असलियत खुल जाती है। संपदाएँ चंद्रमा की तरह दूर से चमकती तो खूब हैं, पर कोई वहाँ चला जाए तो वायु, जल, जीवनरहित एक निष्प्राण नीरव और अंड-खंड-पिंड ही दृष्टिगोचर होगा।

वैभव संग्रह कर सकना सहृदय व्यक्ति के लिए संभव नहीं, संसार में इतना दुःख भरा पड़ा है कि उसे दूर करने के लिए संपदा तो क्या सहृदय व्यक्ति अपना प्राण भी देना चाहता है। जो सब ओर से आँख बंद किए रहे, अपने और अपने बेटे की अमीरी ही सोचता रहे, केवल उसी कठोर हृदय कंजूस के लिए अमीर बन सकना संभव है। न्यायोपार्जित आजीविका स्वल्प होती है, उससे गुजारा भर हो सकता है, संग्रह नहीं। संगृहीत संपदा समीपवर्तियों में ईर्ष्या, द्वेष उत्पन्न करती है। ठग पीछे पड़ते हैं और उनकी घात न लगे, तो शत्रु बनते हैं। संग्रह की सुरक्षा और भी कठिन है। मधुमक्खी के छत्ते पर न जाने कितनों का दाँव रहता है, फिर वह संपदा मदोन्मत्त बनाती है, अहंकार बढ़ाती है और व्यसनी, विलासी बनाकर पतन के गर्त में धकेल देती है। जब तक वह संग्रह रहता है, उत्तराधिकारी भी यह दंड दुष्परिणाम भोगते हैं।

विभूतियाँ आंतरिक सद्गुणों को कहते हैं। असली संपदा यही है। वे जहाँ भी होंगी व्यक्तित्व में श्रेष्ठता का समावेश करेंगी। सम्मान और सहयोग का क्षेत्र बढ़ाएँगी। मित्रों का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाएगा। प्रशंसकों की कमी न रहेगी।

सद्गुणों के आधार पर ही ठोस, चिरस्थायी और उच्चकोटि की सफलताएँ मिलती हैं। श्रमशीलता, साहस, धैर्य, लगन, संयम और अध्यवसाय के आधार पर ही इस संसार में विविधविध, उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं और प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। सच्चरित्रता एवं प्रामाणिकता के आधार पर ही विश्वास प्राप्त किया जाता है और विश्वासी को ही समाज में अपनाया जाता है, उसे ही महत्त्वपूर्ण काम सौंपे जाते हैं तथा सहयोग दिए जाते हैं। अप्रामाणिक व्यक्ति अपना विश्वास खो बैठता है और उस कमी के कारण उसे कहीं भी सच्चा सहयोगी नहीं मिलता। फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण प्रगति से उसे आजीवन वंचित ही रहना पड़ता है।

सद्भावनासंपन्न सद्गुणी व्यक्तित्व अपने आप में एक वरदान है। ऐसा व्यक्ति अपने भीतर संतोष, उल्लास और हलकापन अनुभव करता है। उसे न किसी से डर होता है और न दुराव। जिसमें न भीरुता है और न दुष्टता; वह किसी से क्यों डरेगा ? जिसके मन में पाप-दुराव नहीं है; उसे किसी के आगे झेंपने, झिझकने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी ? सदाचारी व्यक्ति निर्भय रहता है और निर्द्वंद्व। अपनी न्यायोपार्जित आजीविका से गरीबों जैसा गुजारा करते हुए भी उसे इतना संतोष रहता है; जितना अनीति उपार्जित विपुल संपदा के स्वामी को कभी स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। हमें संपदाओं के लिए लालायित नहीं होना चाहिए। विभूतियों का महत्त्व समझना चाहिए। जहाँ विभूतियाँ होंगी, वहाँ संपदाएँ भी रहेंगी, पर आँख मूँदकर संपदा के पीछे भागने से खाली हाथ रहना पड़ता है। उसे न सुख मिलता है और न संतोष।

विचारों की निरंतरता

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जब व्यक्ति नहीं सोच रहा होता है; तब भी वह सोच रहा होता है। प्रथम दृष्टि में कथन कुछ पहेली-सा प्रतीत होता है। जब हम स्वयं सोच ही नहीं रहे हैं, तो फिर मस्तिष्क कैसे सोचेगा? बात कुछ हद तक सही मानी जा सकती है; क्योंकि मस्तिष्क की क्रिया का भी अपना महत्त्व और स्थान है। यह सत्य है कि मनुष्य जब चिंतन करता है, तो साथ-साथ मस्तिष्क भी सोचता है या दूसरे शब्दों में कहें, तो यह कहना पड़ेगा कि वह मस्तिष्क के माध्यम से ही मनन करता है, किंतु असत्य यह भी नहीं है कि जब मनुष्य नहीं सोचता है; तब मस्तिष्क शांत नहीं बैठा रहता, कुछ-न-कुछ ताने-बाने बुनता रहता है।

अब यह कोई छिपी बात नहीं रही कि स्थूल मस्तिष्क अथवा चेतन मस्तिष्क के अतिरिक्त उसकी अन्य कई परतें भी हैं; जिन्हें मनोविज्ञान की भाषा में चेतन, अचेतन, अवचेतन और सुपरचेतन के नाम से जाना जाता है। मनोविज्ञानवेत्ता जब यह कहते हैं कि मनुष्य जब शांत एकांत में पड़ा रहता है, तब भी उसका मस्तिष्क सक्रिय रहता है, तो इससे उनका इशारा चेतन मस्तिष्क से नहीं, वरन उसकी अन्य परतों की ओर होता है।

प्रयोगों के दौरान देखा गया है कि कई बार जो संदेश चेतन मस्तिष्क को दिए जाते हैं; उन्हें वह अनावश्यक और अनुपयोगी समझकर छोड़ देता है, पर उन्हीं निरर्थक लगने वाले संकेतों से मस्तिष्क की सूक्ष्मपरतों में हलचल मच जाती है और उसके अनुरूप वह कार्य करना आरंभ कर देता है। इसे यदि सूक्ष्ममस्तिष्क का सोचना-समझना कहा जाए, तो अनुपयुक्त ही क्या है? यद्यपि स्थूलचिंतन हमारा रुका हुआ है।

इसी सिद्धांत पर मनोविज्ञान की मनश्चिकित्सा पद्धति आधारित है। मन:शास्त्रियों ने इसी सिद्धांत के आधार पर अनेकानेक प्रयोग कर, यह निष्कर्ष निकाला कि यदि चेतन मस्तिष्क को उपयुक्त संदेश दिया जाए तो अवचेतन मस्तिष्क में घुसी विकृतियों, व्यसनों, कुंठाओं और रोगों को निकाल बाहर किया जा सकता है। इसी को आटोसजेशन, हेट्रोसजेशन के माध्यम से क्रियान्वित भी किया जा रहा है एवं इसके परिणाम भी उत्साहवर्द्धक रहे हैं। इंग्लैंड के मनोविज्ञानी ए० स्मिथ ने एक पुस्तक लिखी है—'डज ब्रेन थिंक, ह्वेन आई स्लीप?' इस पुस्तक में विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से उन्होंने यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जब हम सोते हैं अथवा जागते हुए सुषुप्ति जैसी स्थिति में पड़े रहते हैं; तब भी मन-मस्तिष्क शांत बना नहीं रहता, अपितु विचारों के ऊहापोह में उलझा रहता है और जो उसे काम की बात लगती है, उसे वह संरक्षित रखकर शेष को छोड़ देता है अर्थात उनके अनुसार मस्तिष्क इस दौरान सूचनाओं की छँटनी में व्यस्त रहता है।

मनोविज्ञान की इस विधा द्वारा मनोविकारों को भी हटाया-मिटाया जा सकता है। यदि हम चेतन मस्तिष्क को बार-बार कोई सूचना दें तो देखा गया है कि अनेक प्रयासों के उपरांत वह मस्तिष्क की सूक्ष्म परतों में धँस जाती है एवं वैसी ही क्रियाएँ और परिस्थितियाँ विनिर्मित करने लगती है; जैसा संदेश होता है। यद्यपि सूचनाएँ दिन में कुछ ही बार देनी पड़ती हैं, किंतु अवचेतन मस्तिष्क उस आधार पर अहर्निश कार्य करने लगता है। सूक्ष्ममस्तिष्क की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर यदि यह कहा जाए कि तब हम नहीं सोचते हैं, तो भी मस्तिष्क सोचता रहता है, तो इसमें अत्युक्ति क्या है? □

मनुष्य जीवन में सबसे मधुर यदि कोई वस्तु है तो वह है—स्नेह, सद्भाव, आत्मीयता। एकदूसरे के प्रति जहाँ इस प्रकार की भावना रहती है, वहाँ स्वर्ग का साक्षात्कार होता है।

आज्ञाचक्र की ध्यान-साधना

साधनाक्रम में प्रथम शक्ति-संचार, द्वितीय जप-ध्यान तथा तृतीय त्राटक अभ्यास का साधनाक्रम बनाकर चलने से स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरों के सुविकसित होने का—सर्वतोमुखी समर्थता प्राप्त होने का लाभ मिलता है। त्राटक रात्रि में सोने से पूर्व करना चाहिए। उसके लिए न्यूनतम पंद्रह मिनट और अधिकतम आधा घंटा समय लगना चाहिए।

इस साधना के लिए एकांत अँधेरा कमरा चाहिए। ध्यान मुद्रा में बैठा जाए। सामने तीन फुट की दूरी पर चौकी बिछाकर उस पर दीपक रखना चाहिए। शुद्ध घी की अपेक्षा शुद्ध तिली का तेल दीपक में जलाना उत्तम है।

आँख खोलकर दीपक की लौ को एक-एक मिनट देखें। इसके बाद आँखें बंद कर लें। भावना करें कि दोनों भृकुटियों के मध्य आज्ञाचक्र के स्थान पर दीपक की लौ जैसी ज्योति की प्रतिष्ठापना हो रही है। आँख खोलकर दीपक की लौ देखने, फिर उसे खींचकर आज्ञाचक्र में जगमगाने का बार-बार अभ्यास पंद्रह मिनट तक चलता रहना चाहिए। प्राय: पंद्रह दिन में ऐसी स्थिति बन जाती है कि आज्ञाचक्र में प्रकाशबिंदु का हलका-सा आभास मिलने लगे। इतना बन पड़ने पर आगे इसका नियमित क्रम चलाना चाहिए।

स्थापना के उपरांत ज्योति-विस्तार का क्रम है। भावना करनी चाहिए कि इस दिव्य ज्योति का आलोक मस्तिष्क के **ब्रह्माकाश** में सुविस्तृत हो रहा है और उससे विभिन्न स्थानों पर अवस्थित अनेकानेक ज्ञान-घटकों को प्रतिबिंबित होने का अवसर मिलता है। ये ज्ञानदीप समस्त मस्तिष्क गह्वर में चमकदार ग्रह-नक्षत्रों की तरह अथवा दीपावली के दीपकों की तरह जगमगाते हैं। साधना का एक-तिहाई समय इसी में लगे।

आज्ञाचक्र ज्योति के **हृदयाकाश** में अवतरण के समय यह भावना करनी चाहिए कि आज्ञाचक्र वाली दीपशिखा हृदय-स्थान पर आलोकित हो रही है। उसका प्रकाश समूचे हृदयाकाश में फैल रहा है। यह आलोक हृदय के महासागर में उठने वाली भावलहरों को प्रभावित कर रहा है। उनकी पुलकन, सिहरन, फुरकन जैसी हलचलें हो रही हैं। श्रद्धा, सद्भावना की सरसता इस क्षेत्र में उमगती और दिव्य प्रेम के बाहुल्य का अमृतोपम रसास्वादन करा रही है। समय का दूसरा तिहाई भाग इसी ध्यान में लगे।

तीसरा है—**प्राणाकाश**। इसका स्थान है नाभिचक्र। सारा समीपवर्ती क्षेत्र इसी परिधि में आता है। मूलाधार चक्र एवं कुंडलिनी केंद्र तक नाभिचक्र का क्षेत्र बिस्तार है। ब्रह्माकाश-हृदयाकाश में समय का एक-तिहाई भाग लगा चुकने के उपरांत अंतिम तिहाई समय प्राणाकाश में ज्योति-दर्शन के निमित्त लगाना चाहिए।

स्मरण करना चाहिए कि आज्ञाचक्र वाली ज्योति-शिखा नाभिकेंद्र में प्रतिष्ठापित और प्रज्वलित हो रही है। उसका प्रकाश कुंडलिनी केंद्र के शक्ति संस्थानों में फैल रहा है। पराक्रम, उत्साह एवं साहस की त्रिविध उमंगें इसी क्षेत्र से उद्भूत होती हैं। काय-संचालन में काम आने वाली विद्युत ऊर्जा का केंद्र संस्थान यही है।

भावना करनी चाहिए कि इस क्षेत्र के समस्त शक्तिघटक ज्योति ऊर्जा की गरमी पाकर कमल-पुष्पों की तरह खिल उठ रहे हैं। दीपकों की तरह प्रकाशवान हो रहे हैं। प्रसुप्ति हट रही और जाग्रति बढ़ रही है। समर्थता और प्रखरता के चिह्न इस क्षेत्र के प्रत्येक घटक में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। समय का अंतिम तिहाई भाग इसी धारणा में लगाना चाहिए।

त्राटकयोग का समापन समस्त काय-कलेवर को सन्निहित महत्त्वपूर्ण घटकों की दीपावली के प्रज्वलित दीपकों की तरह; आकाश में जगमगाने वाले ग्रह-नक्षत्रों की तरह चमकते हुए अनुभव करना चाहिए। सोचें कि काय-कलेवर ज्योति-घटकों की जगमगाहट से परिपूर्ण है। अंतत: समस्त कायसत्ता की एक समूची दीप लौ की स्थिति में परिणति हो रही है। विसर्जन का अंतिम भाग कायदीप का ब्रह्मदीप के समापन के रूप में होना चाहिए। ज्योति-में-ज्योति मिलने का अनुभव किया जाए। यह ध्यान एक बड़ा ही सार्थक ध्यान है।

सामाजिक सुख-शांति का आधार—चरित्रनिष्ठा

स्वेट मार्डेन ने लिखा है—''संसार में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो धन के लिए अपने आप को बेचते नहीं; जिनके रोम-रोम में ईमानदारी भरी हुई है; जिनके भीतर सत्य का दीपक प्रकाशित है; जिनकी अंतरात्मा दिग्दर्शक यंत्र की सूई के समान एक उज्ज्वल नक्षत्र की ओर देखा करती है; जो सत्य को प्रकट करने में क्रूर राक्षस का सामना करने में नहीं डरते; जो कठिन कार्यों को देखकर हिचकिचाते नहीं; जो अपने नाम का ढिंढोरा पीटे बिना ही साहसपूर्वक काम करते जाते हैं; मेरी दृष्टि में वे ही चरित्रवान आदमी हैं।''

हमारी प्रगति की सीमा हमारे चरित्र का स्तर ही निर्धारित करने में सहायक होगी। चरित्र ही अन्य संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त करता है। जीवन की स्थायी सफलता का आधार मनुष्य का चरित्र ही है। यदि इसके बिना किसी प्रकार सफलता पा भी ली गई तो टिकाऊ नहीं होगी। जीवन की अंतिम सफलता चरित्र पर ही आश्रित है। संपूर्ण जीवन कार्य, व्यवहार, विचार, मनोभावों की निर्मलता से ही हमारे चरित्र का गठन होता है। अपने मनोभाव, चेष्टाओं पर अपना नियंत्रण रखना, बुराइयों को छोड़कर जीवन में अच्छाइयों को महत्त्व देना **आत्मसंयम** है। दूसरों की भलाई के लिए अपनी सुख-सुविधा छोड़ना **आत्मत्याग** है। जीवन-शोधन, परमार्थ एवं अपने लक्ष्य-पथ पर आगे बढ़ना **अध्यवसाय** है। जिसके जीवन में इस त्रिवेणी का संगम होता है, वह सहज ही चरित्र की पवित्रता प्राप्त कर लेता है। कड़ी मेहनत से धन कमा सकते हैं, वाक्-चातुर्य के बल पर नेतागीरी मिल सकती है, किंतु इन विभूतियों के बावजूद भी चरित्रवान नहीं हो सकते; यदि संयम, आत्मत्याग और अध्यवसाय न हो।

चरित्र स्वार्थ पर नहीं, परमार्थ पर जीवित रहता है। यदि हमारी सामर्थ्य तथा धन के सदुपयोग से दूसरे जरूरतमंद लोगों का भला न हो तो सब सामर्थ्य बेकार। अतः चरित्रवान होने के लिए यह भी आवश्यक है कि हम अपनी शक्ति से, विवेक से दूसरे के काम आ सकें। इसके साथ ही मानव जीवन का लक्ष्य है—व्यष्टि के स्तर से उठकर समष्टि के स्तर तक आत्मभाव बढ़ाना। मानव एक सामाजिक प्राणी है। यदि आजीवन हम अपना समय अपने स्वार्थ तथा अपने अहंकार-रक्षण में ही लगाए रखें तो यह स्वार्थपूर्ण जीवन होगा।

चरित्र आदमी का अनमोल धन है। इसकी हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। हमारे भौतिक साधन किसी कारणवश आज नहीं हैं तो कल हो जाएँगे, लेकिन यदि प्रभाववश अपने चरित्र को गिरा दिया तो पुनः वह स्तर पाना असंभव है। देखा यह गया है कि धन, मान-मर्यादा और यश उस व्यक्ति के पीछे चलते हैं, जिसका चरित्रबल सुदृढ़ है। साधनहीन सच्चरित्र व्यक्ति को विश्वासपूर्वक सभी सहयोग करते हैं। यदि उस पर किसी प्रकार की आपत्ति आती है तो अनेक सहायक मिल जाते हैं, किंतु दूसरी ओर एक चरित्रहीन के अपने भी पराये हो जाते हैं। राम की सीता का हरण हुआ, अनेक बंदर-भालू जान पर खेलकर लड़े। किंतु नीति-विहीन रावण का अपना सगा भाई विभीषण साथ छोड़ गया। समाज भी आदर्श उन्हीं को मानता है, जो निष्ठापूर्वक चरित्र की रक्षा करते हैं। सभी अपने बच्चे का नाम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, हनुमान या युधिष्ठिर रखना चाहते हैं, लेकिन ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है जो रावण, कंस या दुर्योधन रखे।

आचरणहीन व्यक्ति समाज में उन्नति नहीं कर सकते। भले ही कुछ देर के लिए संपत्ति खड़ी कर लें, सहयोगियों की एक लंबी जमात बना लें, किंतु भीतर से सदैव खोखले रहेंगे। मनोबल हमेशा गिरा रहेगा, आनंद, उत्फुल्लता, निर्भयता, आत्मनिर्भरता और संतोष के लिए हमेशा तरसते रहेंगे। कुछ देर के लिए प्रतिष्ठा भी भले मिल जाए, किंतु परदाफास भी

देर या सबेर होगा ही, सबसे पहले तो अपनी भीतर की अंतरात्मा ही परेशान किए रहेगी। छोटी-छोटी गलतियाँ भी भयंकर परिणाम दिखलाएँगी। परिणामतः बेचैनी और अकुलाहट बनी रहेगी। अतः चरित्रहीन व्यक्ति समाज से डरेगा, परिवार से डरेगा; यहाँ तक कि अपने आप से भी डरेगा। इस डर के भूत से पीछा छुड़ाने के लिए ही ऐसे लोग घोर व्यसन के शिकार होते देखे जाते हैं। उनका मन सदैव अशांत रहता है।

दूसरी ओर चरित्रवान सदा उत्फुल्ल रहेगा। निर्भयता उसके रोम-रोम से टपकेगी। उसे चारों ओर संतोष-ही-संतोष दिखलाई देगा। आपत्तिकाल में जब साधारण लोग घबरा जाएँगे तो यह मुस्कराता रहेगा। यह तथ्य है कि सुख या दुःख आता और जाता रहता है। मगर वह न दुःख में उद्विग्न होगा और न सुख में इतराएगा।

मानव जीवन की सार्थकता उज्ज्वल और उच्च चरित्र से होती है। सामाजिक प्रतिष्ठा के भागीदार वे होते हैं, जिनमें चरित्रबल होता है। जिस पर सभी लोग विश्वास करते हैं। ऐसे ही लोगों की साख औरों पर पड़ती है, परोपदेश तो वाक्चातुर्य के बल पर भी कर सकते हैं, किंतु दूसरों को प्रभावित और सद्मार्ग पर लाने का काम केवल चरित्रवान ही कर सकते हैं। सद्विचारों और सत्कर्मों की एकरूपता को ही चरित्र कहते हैं। जो अंदर से छली-कपटी-क्रूर हैं तथा दिखलाने के लिए सज्जन बने हुए हैं, वे कभी भी चरित्रवान नहीं बन सकते। जो अपनी इच्छाओं को नियंत्रित रखते हैं और उन्हें सत्कर्मों का रूप देते हैं, उन्हीं को चरित्रवान कहा जा सकता है। संयत इच्छाशक्ति से प्रेरित सदाचार का नाम ही चरित्र है।

समाज का सौंदर्य, सुख और शांति चरित्रवान व्यक्तियों के द्वारा ही स्थिर रहती है। दुश्चरित्र और दुराचारी से सभी भयभीत रहते हैं। उनके पास आने में लोग लज्जा और संकोच अनुभव करते हैं। जो भी उनके संपर्क में आता है, उसे ही वे अपने दुष्कर्मों की आग में लपेट लेते हैं। ऐसा समाज दुःख, कलह और कटुता से झुलसकर रह जाता है। अनेक प्रकार की भौतिक संपत्तियाँ व सांसारिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त होते हुए भी लोगों को शांति उपलब्ध नहीं होती। अधिकतर लोग कुढ़-कुढ़कर जीवन बिताते रहते हैं। ये सब चारित्रिक न्यूनता के कारण ही होता है।

जिन देशों में स्त्री-पुरुषों के बीच की शील-मर्यादाएँ निश्चित नहीं हैं, वहाँ भारी विशृंखलता पाई जाती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति कम अस्त-व्यस्त नहीं हुई। इसके दुष्परिणामस्वरूप ही स्वास्थ्य की दुर्दशा अशक्तता, अपहरण, हत्या और आत्महत्याएँ आएदिन समाज में होती हैं। सदाचार की सीमाएँ जब तक निर्धारित न होंगी और दुराचार पर जब तक प्रतिबंध नहीं लगेगा, तब तक समाज में सुख-शांति और व्यवस्था का स्थापित होना प्रायः असंभव ही है।

बार-बार रंग बदलने की अपनी पटुता का प्रदर्शन करते हुए गिरगिट ने कछुए से कहा—''महाशय! देखा मैं संसार का कितना योग्य व्यक्ति हूँ?'' कछुए ने धीरे से कहा—''महाशय! दूसरों को धोखा देने की इस योग्यता से तो तुम अयोग्य बने रहते, तो अच्छा था; कम-से-कम लोग भ्रम में तो न पड़ते।''

भीतर-बाहर से पवित्र रहने, शुद्ध आचरण करने, श्रेष्ठ पुस्तकों का स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, पुरुषार्थ, आत्मिक प्रसन्नता के आधार पर ही मनुष्य की उन्नति संभव है। आत्मनियंत्रण, संयम और संभाषण से न केवल अपने को, वरन अपने पास-पड़ोस और संपर्क में आने वाले को भी सुख मिलता है। मानवता का विकास भी इसी से संभव है कि हम दूसरों को अपने जैसा समझें तथा उनके साथ भी सद्व्यवहार करें। चरित्र के धनी लोगों से ही सत्प्रेरणाएँ समाज को मिलती हैं।

चरित्रवान बनने के लिए अपनी आत्मिक शक्ति जगाएँ। तप, संयम और धैर्य से आत्मा को बलवान बनाएँ। मन में बुरे विचार आने से रोकें, कठिनाइयों से कतराएँ नहीं, उनसे सामना करें; तभी चरित्रवान बनने की कल्पना साकार होगी।

कर्मफल विधान जानकर हुआ कायाकल्प

दिल्ली में सेठ हरभजन वणिकों में अग्रगण्य थे। उन्होंने दिल्ली में अपना एक नया आलीशान भवन बनवाना शुरू किया। इस भवन की चर्चा चारों ओर फैली। सेठ हरभजन शाह के प्रतिद्वंद्वी व्यापारी श्रीचंद को जब इस निर्माण का समाचार मिला तो उन्होंने कटाक्ष किया, ''पितरों की नगरी तो उजड़ रही है और सेठजी यश के लिए यहाँ संपत्ति पानी की तरह बहा रहे हैं।''

सेठ हरभजन को इस कथन का पता चला। उन्होंने हवेली का निर्माण रुकवा दिया और सारी धन-संपदा लेकर अग्रोहा को चल दिए। सेठजी ने अग्रोहा पहुँचकर चारों ओर खबर फैला दी, अग्रोहा में आकर बसने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सेठ हरभजन सभी आवश्यक साधन एवं सुविधाएँ प्रदान करेंगे। लखी नामक बनजारा भी अग्रोहा पहुँचा। उसने व्यापार करने के लिए सेठ हरभजन शाह से रुपया माँगा। सेठ ने पूछा—''किस जन्म में इस कर्ज को चुकाओगे?''

लखी सेठजी के इस प्रश्न पर चौंका और बोला— ''मैं आपका आशय नहीं समझा, सेठजी।'' ''भाई इस जन्म में चुकाने का वायदा करते हो तो हिसाब करके रोकड़िया से रुपये ले लो और अगले जन्म में चुकाना हो तो ऊपर वाले खंड में चले जाओ और जितना चाहे ले लो। हम उस रुपये की कोई लिखा-पढ़ी नहीं करते।''

लखी ने सोचा, अगले जन्म में कौन किससे मिलेगा? नई मंडी है, व्यापार में घाटा हुआ, तो सेठजी को रुपये कैसे लौटाऊँगा? उसने कहा, मुझे तो अगले जन्म में चुकाना है।

सेठजी ने उसे हवेली के ऊपर वाले खंड पर भेज दिया। वहाँ से उसने एक लाख रुपया लिया और अपने डेरे पर आया। वह मन-ही-मन प्रफुल्लित हो रहा था कि सेठ भी कैसा मूर्ख एवं नासमझ है। अगले जन्म में उसे कौन चुकाएगा? वह तो यूँ ही अपना रुपया बरबाद कर रहा है।

अपने डेरे के बाहर बैठा, वह यही सब कुछ सोच रहा था कि सामने से एक संत निकले। महात्मा जी को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और बोला—महाराज! आप आज मेरे यहाँ विश्राम कर मुझे सेवा का मौका प्रदान करें। संत लखी के इस निश्छल आग्रह को ठुकरा न सके, स्नेहपूर्वक बोले, क्या बात है लखी ! आज कोई विशेष बात है क्या?

लखी ने अपना सारा वृत्तांत कह सुनाया और बोला—महाराज! अब आप ही बताइए कि क्या अगले जन्म में मुझे और सेठ हरभजन शाह को मानव चोला ही मिलेगा? क्या यह भी निश्चित है कि हम दोनों एक ही जगह पैदा होंगे और हम दोनों की स्मृतियाँ भी अक्षुण्ण रहेंगी?

महात्मा जी ने उसे पुनर्जन्म का विधान बताया और कहा, कर्म अविनाशी हैं, ये कभी नष्ट नहीं होते। जन्म-जन्मांतर तक अच्छी-बुरी परिस्थितियों के रूप में इन्हें भुगतना पड़ता है। अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने कुछ पौराणिक प्रसंग बताते हुए कहा कि तुम्हें बैल बनकर यह कर्जा चुकाना पड़ेगा। महात्मा जी की बात सुनकर वह घबराया और रुपया लेकर वापस हरभजन शाह की हवेली पर पहुँचा।

वहाँ जाकर उसने सारा धन सेठ के समक्ष रखा और बोला—''सेठजी अगले जन्म में यह रुपया चुकाने की क्षमता मेरे पास नहीं है। इसे आप वापस ले लें।''

सेठजी ने रुपया लेने से इनकार कर दिया। लखी ने बहुत अनुनय-विनय की, लेकिन वे नहीं माने। लखी वापस महात्मा जी के पास आया और उन्हें सारी बात बताई।

महात्मा जी ने उसे सुझाव दिया कि अग्रोहा में कोई सरोवर नहीं है। अतः तुम इन रुपयों से एक सरोवर बना दो। लखी ने सेठजी के रुपयों से एक सुंदर सरोवर का निर्माण शुरू कर दिया। सरोवर

देखकर सारे नगरवासी प्रशंसा करने लगे। लखी ने वहाँ दो चौकीदार नियुक्त कर दिए और आदेश दिया कि इस सरोवर में किसी को जाने न दें।

नगरवासी लखी के पास गए। लखी ने कहा, सरोवर तो सेठ हरभजन शाह का है, वे ही उसको खुलवा सकते हैं। सेठजी तक बात पहुँची तो उन्होंने कहा, यह नितांत असत्य बात है। सरोवर मेरा नहीं है।

सेठजी तत्काल लखी के पास पहुँचे। लखी से कहा, लखी! यह सरोवर तुम्हारा है। तुम्हें इसे जनता के उपयोग के लिए खोल देना चाहिए। लखी बोला, सेठजी अपराध के लिए क्षमा चाहूँगा। आपसे अगले जन्म में चुकाने के लिए एक लाख रुपया उधार लिया था। आपको रुपया वापस लौटाना चाहा, तो आपने लेने में असमर्थता दिखाई। उसी रकम से मैंने यह सरोवर बनवाया है। आपकी संपदा है, आप ही इसके स्वामी हैं। सेठजी बात समझ गए। उन्होंने उसी क्षण शेष रुपयों की भरपाई कर दी, सरोवर जनता के लिए खोला गया।

सेठजी ने उस सरोवर का नाम 'लखी सरोवर' रखा और कहा, जब तक यह सरोवर रहेगा, लखी के कायाकल्प की कहानी लोगों को प्रेरणा देती रहेगी कि कर्मफल विधान सृष्टि का एक अनिवार्य सच है।

एक बार ईसा एक गाँव से होकर गुजर रहे थे। उन्होंने एक आदमी को वेश्या के पीछे भागते हुए देखा, तो रुक गए और उसे गलत कार्य करने से मना करने और समझाने लगे।

गौर से चेहरा देखा तो वह पूर्ण परिचित-सा लगा। स्मरण करने पर पुरानी घटना याद आई। उन्होंने फिर कहा—''अरे! तू तो वह व्यक्ति है, जिसने दो वर्ष पूर्व अंधेपन से छुटकारा पाने की याचना की थी और मैंने प्रभु से प्रार्थना करके आँखों की ज्योति दिलाई थी।''

उस व्यक्ति ने ईसा को पहचान लिया और बोला—''आप जो कहते हैं सो ही सत्य है।'' ईसा ने कहा—''मैंने तुझे देखने की शक्ति इसीलिए नहीं दिलाई थी कि उसका उपयोग ऐसे घिनौने काम के लिए करे।''

व्यक्ति कुछ देर चुप बैठा रहा और अपनी भूल पर आँसू बहाता रहा, पर आगे पैर बढ़ाते हुए महाप्रभु के चरण चूमकर उसने दबी जबान से इतना और कहा—''आपने नेत्रदृष्टि तो दिलाई, यदि अच्छा सोचने की बुद्धि पहले दिलाई होती तो कितना अच्छा होता?''

ईसा ने आज नया पाठ पढ़ा। वे लोगों को सुविधा दिलवाने की अपेक्षा उनकी समझ सुधारने की बात को प्राथमिकता देने लगे।

पर्वों से सृजनात्मक उमंगों का जागरण

पर्व और त्योहारों की जितनी भरमार हिंदू धर्म में है; उतनी और कहीं किसी में नहीं। कारण यह है कि अनेक संस्कृतियों और परंपराओं का इसमें समन्वय हुआ है। कभी भारतीय संस्कृति विश्वव्यापी थी। यहाँ के देवमानव संसार भर को अपना परिवार मानते थे और सुदूर क्षेत्रों में जाकर भी सर्वतोमुखी अभ्युदय के निमित्त अनवरत प्रयत्न करते थे। इसके लिए उन्हें परिव्राजकों की तरह भ्रमणशील रहना पड़ता था।

बिखराव को एकात्मता में बाँधने के लिए उन्होंने एक क्षेत्र को महान घटनाओं, महान परंपराओं को दूसरे क्षेत्रों में अवगत-प्रचलित कराने के लिए प्रयत्न किए, जिससे सीमित संकीर्णता की परिधि टूटे और व्यापकता का भाव बढ़े। यही कारण है कि चित्र-विचित्र देवी-देवताओं और प्रथा-प्रचलनों का संग्रहालय भारतीय धर्म बन गया। पर्व-त्योहारों के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। उनमें विभिन्न क्षेत्रों और जातियों की मान्यताओं का समावेश देखा जा सकता है।

वर्ष में 360 या 365 दिन होते हैं, पर अपने हिंदू समाज में पर्व-त्योहारों की संख्या 450 के करीब है। इन सभी को मनाना उन्हीं के लिए संभव है; जिन्हें रोटी कमाने की चिंता या और किसी प्रकार की जिम्मेदारी न हो। जो हर रोज एक-दो पर्व मनाया करे; ऐसा व्यक्ति कोई अतिशय भावुक एवं कुबेर-भंडारी जैसा धनाध्यक्ष ही हो सकता है। साधारण व्यक्ति के लिए इन सबको अपनाना-मनाना संभव नहीं हो सकता।

अन्य प्रमुख धर्मों में थोड़े-थोड़े ही पर्व होते हैं। जो होते हैं; उनके पीछे कोई प्रेरणा, परंपरा, शिक्षा या उमंग होती है। इसलिए उन्हें मनाया भी भावनापूर्ण जाता है। उनका स्मरण भी रखा जाता है; उनके साथ जुड़े हुए संदेशों को भी हृदयंगम किया कराया जाता है। यह सब तभी बन पड़ता है; जब पर्व-त्योहारों की संख्या सीमित हो और मनाए जाने के पीछे कोई भावभरा उद्‌देश्य हो।

अपने पर्व-त्योहारों में देवताओं की छिटपुट पूजा-पत्री एवं खान-पान में पकवान, मिष्टान्नों का समावेश भर ही प्रचलित है। जब-तब, जहाँ-तहाँ मेले-ठेले भी होते हैं और नदी-सरोवरों के स्थान देवालयों के दर्शन भी सम्मिलित रहते हैं। आशा की जाती है कि इससे अमुक देवता प्रसन्न होंगे। रक्षा करेंगे, संकट टालेंगे और मनोकामना पूर्ति में सहायता देंगे। एक अन्य कारण पूर्व परंपराओं का निर्वाह भी है; चूँकि पूर्वज वैसा करते आए हैं; इसलिए वंशजों को भी वह लकीरें पीटनी चाहिए। ऐसे ही कुछ कारण मस्तिष्क में रहते हैं। विभिन्न जाति-वंश भी कुछ पर्वों के लिए, अपने लिए विशेष रूप से निर्धारण मानते हैं। अन्य लोगों के न करने पर भी अपनी कुल परंपरा निभाते हैं।

उपेक्षापूर्वक उदास मन से किसी प्रकार चिह्न-पूजा कर लेने से, समय का अपव्यय ही होता है। साथ ही श्रम तथा पैसे की हानि भी। इस प्रकार कुछ टंट-घंट कर लेने से न अपना भला होता है और न किसी अन्य के मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है। अंधविश्वास की मन:स्थिति में किसी प्रकार कुछ कर लेने से क्या किसी का कुछ भला हो सकता है? इस स्थिति के कारण, पर्व उपहास का कारण ही बनते हैं।

प्राचीनकाल में प्रत्येक पर्व-त्योहार के पीछे महत्त्वपूर्ण प्रेरणाओं का समावेश था। जुड़े हुए आदर्शों के प्रति आंतरिक उत्साह उभारा जाता था; इसके लिए सामूहिक आयोजन होते थे। मिल-जुलकर एक स्थान पर एक उद्‌देश्य के लिए एकत्रित हुआ जाए और एक पद्धति का क्रिया-कृत्य संपन्न किया जाए, तो उससे परंपरा-निर्वाह के साथ मैत्री भी बढ़ती है और सहकृत्य से उत्साह भी बढ़ता है। वह होना इतने

अंतर से चाहिए कि बीच के दिनों में नवीनता के लिए उमंग उठने लगे। आएदिन का ढकोसला तो द्वंद्व उत्पन्न करता है।

प्रचलित पर्वों में कुछेक ही महत्त्वपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण हैं। उनको अलग से छाँट लिया जाए। व्यस्तता और महँगाई के दिनों में उतना ही अपनाया जाना चाहिए, जो आवश्यक हो।

राष्ट्रीय पर्वों में 15 अगस्त, 26 जनवरी, तिलक जयंती, गांधी जयंती आदि का महत्त्व माना जाता है। संप्रदायों के जन्मदाताओं की जयंती भी कुछ अर्थ रखती है। सामाजिक पर्वों में होली, दीपावली, दशहरा, रक्षाबंधन आदि का महत्त्व है। अध्यात्म पर्वों में वसंत-पंचमी, गीता जयंती, गुरुपूर्णिमा, श्रावणी की महिमा है। पारिवारिक त्योहारों में भाई-दौज, हरतालिका तीज, श्राद्ध अमावस्या, शरदपूर्णिमा आदि के अपने-अपने इतिहास और संदेश हैं। जिनकी रुचि, प्रकृति, परंपरा जिनके लिए उत्साह उत्पन्न करती है; वे उन्हें मना सकते हैं, पर इतना आवश्यक है कि जो भी किया जाए, मिल-जुलकर किया जाए। मात्र पकवान बनाने का, पूजा-पत्री की चिह्नपूजा करके बात को समाप्त न किया जाए। सामूहिक आयोजन हर्षोत्सवों के रूप में सामूहिक रूप से मनाए जा सकते हैं। इतना न बन पड़े तो परिवार, पड़ोस के सदस्यों को एकत्रित करके छोटे सहभोज और उस दिन के साथ जुड़े संदेश का स्मरण किया जाए। इससे सद्भाव बढ़ता है और मनोमालिन्य के जमा हुए कचरे को बुहारने का अवसर मिलता है।

जन्मदिन, विवाहदिन, दीक्षादिन आदि मानवीय गरिमा का स्मरण दिलाने वाले दिनों को छोटे-बड़े जैसे भी तौर-तरीके से उन्हें मनाया जाए। इतना अवश्य स्मरण किया जाए कि इनके साथ क्या दायित्व कंधे पर लदे हैं; उनकी पूर्ति के लिए जो आवश्यक था, वह किया गया है कि नहीं? यदि बन पड़ा है, तो कितना? कमी रही है, तो कितनी? इस समीक्षा के साथ यह भी होना चाहिए कि भविष्य में उन दायित्वों को अधिक तत्परतापूर्वक निभाया जाए।

भारतीय धर्म में जयंतियों की भरमार है। महामानवों-देवजनों के जन्मोत्सव ही मनाए जाते हैं। समझा जाता है कि आत्मा अमर है। साथ ही उन दिव्यात्मा का यश-शरीर भी विद्यमान है। उनकी गौरव-गरिमा का अनुकरण तथा अभिनंदन सदा होता रहेगा। आदर्शवादी व्यक्तित्वों का शरीर न रहने पर भी उनकी मृत्यु नहीं होती। अतएव उनका मरण दिन स्मरण नहीं रखा जाता है और न उस दिन किसी प्रकार का आयोजन होता है।

पारिवारिक संबंधियों के श्राद्ध होते हैं; इसका तात्पर्य पूर्वजों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करना है। इसमें एक उद्देश्य उनके ऋणों से उऋण होना भी है। जो चले गए, उन्हें अब न तो ढूँढ़ा जा सकता है और न कृतज्ञता अथवा श्रद्धांजलि स्वीकार करने के लिए वापस बुलाया जा सकता है। संभव श्राद्ध यही हो सकता है कि जिन सत्प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर वे हमारी सेवा-सहायता करते रहे; उनको शाश्वत मानकर अधिकाधिक बढ़ाने के लिए जो संभव हो प्रयत्न करते रहा जाए। बड़ों का वात्सल्य, समवर्ग की मैत्री, छोटों की आत्मीयता भरी भावश्रद्धा—ये सभी उस सदाशयता के प्रतीक हैं; जिनसे प्रेरित-प्रभावित होकर व्यक्ति कौटुंबिकता के स्नेह-सौजन्य में बँधता है। श्राद्ध यही हो सकता है कि सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन में अपना योगदान सम्मिलित किया जाए। जो अपनी उपयोगिता गँवा बैठे, उन पर्वों में कटौती की जानी चाहिए और जिनकी उपयोगिता प्रेरणा अभी भी यथावत् बनी हुई है; उन्हें अपेक्षाकृत और अच्छी तरह मनाया जाए। कुछ लोग कुछ पर्व किसी प्रकार मना लें, इसकी अपेक्षा अच्छा है कि उन्हें सार्वजनिक उत्कर्ष का प्रेरणाप्रद माध्यम बनाया जाए। पर्वों की मानवीय गरिमा का संदेहवाहक बनकर नए सिरे से निखारना चाहिए।

प्रतिशोध ने डाँटते हुए धैर्य से कहा— ''बंधु! आप जैसे कायर व्यक्ति के साथ रहने में मेरी शान घटती है; आप मेरे साथ न रहें, तो ही अच्छा।''

धैर्य ने साथ छोड़ दिया, तभी से एकाकी प्रतिशोध भयंकर कांड कराता हुआ संसार में विचरण कर रहा है।

प्रसन्नता एक परमौषधि है

हँसने, मुस्कराने, प्रसन्न, प्रफुल्लित रहने का स्वास्थ्य से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। ऐसा भी कह सकते हैं कि स्वस्थ व्यक्ति ही प्रसन्न रह सकते हैं। उदास, खिन्न, चिंतित, अप्रसन्न व्यक्तियों की अपेक्षा हँसते, मुस्कराते, खिलखिलाते लोग कम चिंतित, हैरान, परेशान देखे जाते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हँसना, मुस्कराना स्वास्थ्य के लिए जरूरी ही नहीं टॉनिक भी है। कितनी ही बार लंबी बीमारी की चिकित्सा करते-करते डॉक्टर, वैद्य रोगी के रोग को ठीक करने में सफलता प्राप्त नहीं कर पाते, तो वे प्रसन्न रहने, हँसने-मुस्कराने, चिंता-उद्विग्नता, खिन्नता से बचने के लिए सुझाव देते हैं। देखा गया है कि जो रोग दवाओं से काबू में नहीं आ सका था, वह मात्र प्रसन्नचित्त रहने, हँसने-मुस्कराने की आदत डालने से धीरे-धीरे ठीक होने लगता है।

मनोवैज्ञानिकों ने अनेक ऐसे लोगों का प्रयोग-परीक्षण किया है, जो उदास, खिन्न, उद्विग्न, बेचैन, हैरान और परेशान रहते थे तथा ऐसे भी लोग उनके संपर्क में आए, जो सदा प्रसन्न रहते थे। दोनों प्रकार के लोगों के स्वास्थ्य परीक्षण की रिपोर्ट में जमीन-आसमान का अंतर पाया गया। ऐसे व्यक्ति जो हलकी-फुलकी मन:स्थिति में पाए गए; उनमें उत्साह, उमंग, स्फूर्ति बनी हुई थी; जबकि उदास, खिन्न लोग हारे, थके, शिथिलता से ग्रसित थे।

मुस्कान, थकान और चिंता की अचूक दवा है। जीवन का वास्तविक आनंद हँसती-हँसाती, खिलखिलाती जिंदगी में ही है। उदासी, हैरानी, चिंता, तनाव मनहूसी तो रोगी मन:स्थिति की सूचक है। हँसना, मुस्कराना ईश्वरीय वरदान है। यह अनेक रोगों से मुक्ति दिलाता है। चिंता, शोक, आवेग, उद्विग्नता का मानव-मन पर आक्रमण होता है। इसीलिए समझदारी और दूरदर्शिता इसी में है कि इनके मुकाबले के लिए मानवीय स्वभाव की सहज उपज, मुस्कान को सदैव बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए।

स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक आहार और संतुलित भोजन की आवश्यकता है और रोगी होने पर दवाओं तथा टॉनिक की भी सलाह दी जाती है। किंतु यह तथ्य भली भाँति उजागर हो चुका है कि यदि रुग्ण मन:स्थिति बनी रही, तो न पौष्टिक खुराक इतनी कारगर सिद्ध होती है और न दवाएँ। आहार-विहार में सतर्कता को महत्त्व देते हुए भी यह सिद्ध हो चुका है कि मन:स्थिति ही स्वास्थ्य बिगाड़ने या सुधारने में प्रमुख भूमिका निभाती है। दुर्बलता या समर्थता अंग-अवयवों में नहीं, वरन उन मस्तिष्कीय ज्ञान-तंतुओं पर अवलंबित है, जो विचार-ऊर्जा तथा भाव-संवेदनाओं से प्रभावित होते हैं। इसलिए समझदार लोग सदैव प्रसन्न और आनंदित रहते हैं तथा स्वस्थ दिखाई देते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हँसना, प्रसन्न रहना दवा से भी अधिक कारगर है। विशेष रूप से मानवीय हृदय की संवेदनशीलता ही उसे स्वाभाविक रूप से घटनाओं से प्रभावित होने के लिए बाध्य करती है। परिणामस्वरूप अन्य प्राणियों की अपेक्षा सुख-दु:ख का प्रभाव मनुष्य की मन:स्थिति पर अधिक पड़ता है और अधिक समय तक प्रभावी होता है। अत: वे शोकाकुल, चिंतित, व्यथित भी देखे जाते हैं; किंतु प्रकृति ने मनुष्य को यह विशेषता भी प्रदान की है कि विचारों के साथ-साथ इसका निष्कासन, निराकरण भी होता रहता है। इसलिए हँसने, मुस्कराने, प्रसन्नचित्त रहने का गुण मनुष्य के हिस्से में सर्वाधिक देखा जा सकता है। उमंग, स्फूर्ति बनाए रखने व स्वस्थ बनने के लिए प्रसन्नता एक सर्वश्रेष्ठ टॉनिक है।

हींग के औषधीय प्रयोग

रसोईघर में प्रयुक्त मसालों में हींग की भूमिका भी कम नहीं है। हींग पाचक भी है, वायुनाशक भी है। पेट के कृमियों को नष्ट कर वात एवं कफ को नष्ट करती है। हृदय रोग से बचाती है। नेत्रों के लिए हितकारक है। शारीरिक एवं मानसिक बलवर्द्धक है। हींग का सेवन करने से श्वासनलिका में जमा हुआ कफ पतला होकर निकलता है। कफ निकालने का गुण होने से खाँसी में लाभदायक है। कफ में रहने वाले रोगाणुओं को नष्ट कर, कफ की दुर्गंध को भी नष्ट करती है।

शुद्ध हींग की परीक्षा

जो हींग पानी में डालने पर धीरे-धीरे पूरी तरह घुल जाए और जल शुद्ध दूध की तरह दिखाई दे तथा कोई अवशेष बरतन के तल में न बैठे, वह हींग शुद्ध होती है। दीयासलाई लगने से हींग पूरी तरह जल जाती है। उसका रंग शुभ्र, गंध तीक्ष्ण और स्वाद कटु होना चाहिए। इसी प्रकार परीक्षित हींग ही उपयोग में लानी चाहिए। व्यावसायिक दृष्टिकोण से मिलावटखोर व्यापारी हींग में गेहूँ का आटा, पत्थर के टुकड़े इत्यादि मिला देते हैं, जिससे उसका वजन बढ़ जाता है। ऐसी हींग पानी में घोलने पर बरतन के तल में बैठ जाती है।

हींग का शोधन

हींग को लोहे के बरतन में घी के अंदर डालकर आग पर रख दें, जब कुछ रंग लाल हो जाए, तब उतारकर उपयोग में लाएँ।

विभिन्न रोगों में प्रयोग

❋ **मानसिक रोगों में**—मनोरोगों में मस्तिष्क के ज्ञानतंतु और मज्जातंतुओं में कमजोरी होने के कारण मस्तिष्क बाहरी घटनाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है, जिससे भूलें होती हैं। निराशाजनक विचारों में दिन-रात डूबे रहने से मानसिक अवसाद जैसी स्थिति हो जाती है। मानसिक कल्पनाएँ भयग्रस्त बना देती हैं। अनेक मनोविकृति जन्म लेने लगती हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में हींग का आधा ग्राम नित्य प्रयोग उपर्युक्त विकृतियों का निवारण करता है।

❋ **गंभीर रोगों में**—आँतों के रोग तथा कृमियों को नष्ट करने के लिए हींग के पानी का एनिमा देना लाभप्रद होता है। सायटिका वात, लकवा (पक्षाघात), हिस्टीरिया का दौरा, मलेरिया ज्वर में लाभकारी है। सन्निपात के लक्षण दिखाई दें तो 'हींग कपूर वटी' की गोली देना चाहिए। गोली न निगल सकें तो हींग को अदरक के रस में घिसकर जीभ पर लेप कर देना चाहिए। इससे नाड़ी की गति में सुधार आता है। हाथ-पाँव का कंपन मिटता है। रोगी का हाथ-पैर पटकना, कपड़े फाड़ना, अनाप-शनाप बकना आदि उपद्रव शांत हो जाते हैं। हींग कपूर वटी के साथ कस्तूरी देने से घबराहट, चक्कर आना इत्यादि रोगों में लाभ होता है।

प्रसव के समय हींग देने से गर्भाशय का संकोचन होकर परिस्राव साफ हो जाता है। गर्भाशय की शुद्धि होती है। दरद बंद हो जाता है।

❋ **हिस्टीरिया में**—हिस्टीरिया रोग तथा हिस्टीरिया के कारण होने वाली विकृतियों में हींग का प्रयोग बेहद प्रभावकारी है। ग्लोबस हिस्टीरिया जिसमें रोगी को पेट के अंदर से एक गोला-सा उठकर छाती की तरफ कंठ की ओर बढ़ता हुआ अनुभव होता है और दौरा पड़ जाता है। इस रोग में हींग कपूर वटी का सेवन चिकित्सक की सलाह के अनुसार करना चाहिए।

❋ **दाद**—हींग का लेप चर्मरोग दाद पर करने से दाद नष्ट हो जाता है।

❋ **कान में सांय-सांय की आवाज एवं बहरेपन में**—हींग और सोंठ चूर्ण से चार गुना मात्रा में सरसों का तेल लेकर तथा तेल से चार गुना मात्रा में अपामार्ग का पंचांग रस डालकर तेल

गरम करें। तेल गरम करते समय चट-चट की ध्वनि होगी। जब ध्वनि बंद हो जाए, तब तेल उतार लें और ठंढा होने पर छानकर शीशी में भर लें। यह सिद्ध तेल कान में डालने पर कान में आवाज होना तथा बहरापन दूर होता है।

❋ **पेटदरद—**आधा तोला हींग गरम पानी में घोलकर पिचकारी द्वारा गुदा-मार्ग से देने से लाभ होता है।

❋ **पेट की गैस—**250 मि. ग्राम हींग लेकर एक गिलास गरम पानी के साथ रोगी को पिला दें, लाभ होगा। यह प्रयोग पाचनशक्ति और भूख बढ़ाता है।

❋ **अपच रोग में—**अपच होने पर खट्टी डकारें आती हों तथा थोड़ा-थोड़ा दस्त होता हो, पेट में वायु भरी हो तो 250 मि. ग्राम हींग को घी लगाकर निगलवा दें। तेज दरद हो तो पेट पर अरंडी का तेल लगाकर गरम पानी से सेंकना भी चाहिए।

❋ **दाँतदरद में—**10 मि. ग्रा. हींग तेल में मिलाकर मुँह में भरकर रखें। 5 मिनट बाद थूक दें और गरम पानी में हींग मिलाकर कुल्ले करें।

❋ **हिचकी में—**वातज हिचकी में हींग और उड़द का धुआँ देने से हिचकी बंद हो जाती है।

❋ **पेशाब रुकने पर—**वायु उत्पन्न होकर पेशाब में रुकावट होने पर 250 मि. ग्राम हींग और छोटी इलायची का 1 ग्राम चूर्ण 1-1 घंटे बाद जल के साथ 3-4 बार देने से पेशाब साफ आ जाता है। यह उत्तम लाभदायक प्रयोग है।

❋ **बिच्छू के दंश पर—**हींग को आक के दूध में घिसकर तुरंत दंशस्थल पर लेप करने से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

❋ **पुराना घाव (घाव बिगड़ जाने पर)—**लंबे समय तक घाव में बदबू होने पर उसे ठीक करने के लिए नीम के ताजे पत्ते 25 ग्राम और 1 ग्राम हींग मिलाकर घी के साथ पीसकर पुलटिस बनाकर बाँधने से घाव के कीड़े मर जाते हैं। घाव जल्दी ठीक हो जाता है। यह प्रयोग कुछ दिनों तक नित्य करते रहने से पूर्ण लाभ होगा।

❋ **कुक्कुर खाँसी में—**हुपिंग कफ की द्वितीय अवस्था में जब खाँसी के साथ दौरे आने लगें, तब 3-3 घंटे में आधा ग्राम हींग को घी के साथ सेवन कराएँ।

विशिष्ट योग

(1) हींग कपूर वटी बनाने का तरीका— हींग और कपूर 10-10 ग्राम लेकर शहद में घोंटकर 1-1 ग्राम की गोलियाँ बना लें। ये अनेक रोगों में काम आती हैं।

मात्रा—1 से 2 गोली दिन में तीन बार।

अनुपान—पानी, दूध, शहद या अदरक के रस के साथ सेवन कराना चाहिए।

एक स्टेशन पर एक बुढ़िया ठंढ के कारण स्टेशन मास्टर के कमरे में अँगीठी पर हाथ सेकने बैठ गई। स्टेशन मास्टर के कार्यालय के सामने भीड़ एकत्रित होती जा रही थी। स्टेशन मास्टर का क्रोध देखते ही बनता था। किंतु बेचारी बुढ़िया ठंढ के मारे अँगीठी पर हाथ सेकना चाहती थी। स्टेशन मास्टर उसे दुत्कारने में लगा था। जो भी आता वहाँ रुकता। पूछता—''बाबूजी, क्यों झल्ला रहे हैं ?'' एक समझदार व्यक्ति भीड़ में से आया और बोला—''यदि इस बेचारी ने ठंढ में हाथ सेक लिए तो क्या जुर्म हो गया ? मास्टर साहब आपने तो बाइबिल पढ़ी होगी। ईसा ने भी ऐसे गरीबों की सहायता, सेवा की है फिर भी आप में सहानुभूति का जरा भी असर नहीं हुआ।'' इतना कहकर उस व्यक्ति ने अपने कंधे से ऊनी चादर उतारी और उस वृद्धा के कंधों पर डाल दी। ये सज्जन थे दीनबंधु एंड्रूज।

यह वात प्रकोप के कारण उत्पन्न सन्निपात, मंद-मंद प्रलाप, बुद्धिभ्रम, हिस्टीरिया आदि में उपयोगी है।

(2) हिंग्वाष्टक चूर्ण—सोंठ, काली मिर्च, पीपल, सफेद जीरा, काला जीरा, अजमोद, सेंधा नमक बराबर की मात्रा में तथा शुद्ध हींग घी में भुनी हुई आधा भाग लेकर, पीसकर चूर्ण बना लें। इसे 3 ग्राम की मात्रा में भोजन के पहले लेने से अनेक प्रकार के उदर विकार मिटते हैं। □

युग निर्माण विद्यालय में प्रवेश के लिए आवेदन करें

गायत्री तपोभूमि में युग निर्माण विद्यालय की स्थापना सन् 1967 में इसलिए की गई थी कि अपने परिवार के बच्चे गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से अपने व्यक्तित्व का उत्कृष्ट विकास कर सकने में समर्थ हों; साथ ही आजीविका की दृष्टि से स्वावलंबी भी बनें। आगे जीवन में आर्थिक निर्भर बन कामयाब बन सकें। शिक्षा और जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है, उसे देखते हुए अगले दिनों नौकरी की आशा लगाए बैठे रहने वालों को निराश होना पड़ेगा। शिक्षा के साथ-साथ कोई-न-कोई उद्योग की शिक्षा भी मिलती रहे तो कुछ समस्या का समाधान हो भी सकता है। व्यक्ति कोई निजी व्यवसाय तो कर ही सकता है। गायत्री तपोभूमि के युग निर्माण विद्यालय से प्रशिक्षण प्राप्त करके आज विद्यार्थी कोई-न-कोई व्यवसाय कर रहे हैं।

युवावस्था में प्रवेश कर रहे किशोरवय के बालकों को श्रमशीलता, शालीनता व सुव्यवस्था का शिक्षण देना इस विद्यालय का मूल उद्देश्य है। संचालित व्यावसायिक प्रशिक्षण में प्रिंटिंग प्रेस, विद्युत फिटिंग, ट्रांजिस्टर, टी.वी., कंप्यूटर, छोटे घरेलू विद्युत उपकरणों की मरम्मत, धुलाई पाउडर, धूपबत्ती, मोमबत्ती, अगरबत्ती, दंतमंजन, लेमीनेशन, फोटो फ्रेमिंग, स्क्रीन प्रिंटिंग, च्यवनप्राश-निर्माण आदि कुटीर उद्योग सिखाए जाते हैं। बैंक, पोस्ट ऑफिस, रेलवे, प्राथमिक उपचार और पुलिस से संबंधित सामान्य जानकारी विभागीय उच्चाधिकारियों द्वारा दी जाती है। इन सब प्रशिक्षणों के अलावा इस विद्यालय की सबसे बड़ी विशेषता है— छात्रों को दिया जाने वाला संगीत, अभिनय, वाक्कौशल, वार्त्तालाप, शिष्टाचार, संभाषण, लोक-व्यवहार, पौरोहित्य, कर्मकांड, धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण तथा युगनेतृत्व का विलक्षण प्रशिक्षण। इसी के साथ छात्रों को सिखाई जाती है—संयमित, सुव्यवस्थित, अनुशासित जीवन जीने की अभूतपूर्व कला, जिसके अंतर्गत प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में जागरण के साथ वंदना, ध्यान-धारणा, योगासन, प्राणायाम आदि आते हैं।

स्वावलंबी, चरित्रवान और लोकसेवी दृष्टिकोण वाले नागरिकों के निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य युग निर्माण विद्यालय सन् 1967 से संपादित करता आ रहा है। इस विद्यालय का अगला सत्र 2020-2021 में प्रारंभ होने जा रहा है। इस सत्र के लिए प्रवेश हेतु आवेदनपत्र आमंत्रित किए जा रहे हैं, ताकि 1 जुलाई, 2020 से प्रारंभ होने वाले सत्र के लिए प्रशिक्षणार्थियों का चयन यथासमय किया जा सके। आवेदनपत्र तथा विवरण पत्रिका युग निर्माण विद्यालय, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-281003 के पते पर पत्र डालकर निःशुल्क मँगा लें। आवेदनपत्र पूर्णरूपेण भरकर 1 जून, 2020 तक **प्राचार्य, युग निर्माण विद्यालय, युग निर्माण योजना, मथुरा-281003** के पते पर आ जाने चाहिए। चयन किए हुए प्रशिक्षणार्थियों को पत्र डालकर या फोन से बुला लिया जाएगा। कृपया अपना मोबाइल नंबर प्रार्थनापत्र में अवश्य लिखें। वे ही आवेदनकर्त्ता यहाँ आएँ, जिन्हें बुलाया जाए। सत्र 1 जुलाई से 30 अप्रैल तक चलता है।

प्रशिक्षण काल में विनम्र, अनुशासित, अच्छे चरित्र और व्यवहार का आश्वासन प्रतिज्ञापत्र पर विद्यार्थी और अभिभावक, दोनों को देना होगा। बच्चों का व्यक्तित्व सँभालना तभी संभव है, जब वे स्वयं भी आश्रम-जीवन की मर्यादाओं का पालन करने में अभिरुचि लें।

यहाँ से मार्ग-व्यय आदि देने का कोई प्रावधान नहीं है। ओढ़ने-बिछाने के बिस्तर और बरतन साथ लाने पड़ते हैं। आवास, प्रशिक्षण, उपकरण, विद्युत, पानी आदि की व्यवस्था निःशुल्क है। 10 माह का भोजन-व्यय (800 रुपये प्रतिमाह) तथा दो धोती, दो कुरता, दो खाकी पेंट-कमीज एवं पी.टी. शू अपने खरचे से बनवाने होते हैं। विद्यालय में प्रवेश की न्यूनतम योग्यता कक्षा 10 उत्तीर्ण तथा अधिकतम आयु 20 वर्ष है। कम योग्यता और अधिक आयु वाले लड़के आवेदन न करें। जो लड़के 2020 की कक्षा 10 की परीक्षा में बैठ रहे हैं, वे भी आवेदन कर सकते हैं। प्रवेश उत्तीर्ण होने पर ही दिया जा सकेगा। भाषा, प्रांत, जाति, वर्ग आदि का कोई भेदभाव नहीं है; पर अनुशासन में किसी को ढील नहीं दी जाती। बार-बार घर जाने की छूट नहीं होती; यह स्पष्ट समझकर ही आवेदन करें।

महापर्व शिवरात्रि

भगवान शिव की पूजा-उपासना भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में श्रद्धापूर्वक की जाती है; श्रावण माह शिवपूजन का विशेष माह तो है ही, प्रत्येक माह की शिवरात्रि को भी शिवार्चन हेतु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। फाल्गुन कृष्ण पक्ष की शिवरात्रि तो शिवोपासना के लिए अत्यंत ही मांगलिक, कल्याणकारी शुभ अवसर है, जो अभीष्ट फलप्रदायक है। गायत्री तपोभूमि में शिवरात्रि के एक दिन पूर्व अखंड रामचरितमानस का पाठ प्रारंभ होता है, जिसका समापन शिवरात्रि के दिन होता है। भगवान श्रीराम के महान जीवन चरित्र उनके अनुपम गौरवशाली व्यक्तित्व के वर्णन के अलावा रामायण में व्यक्ति, परिवार, समाज को उत्कृष्ट दिशा देने वाले अगणित सूत्र समाहित हैं; जिनका मनन-चिंतन हर व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी है; इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रामचरितमानस पाठ द्वारा जनजागरण का अनूठा क्रम प्रतिवर्ष यहाँ संपन्न होता है। इस वर्ष 20 फरवरी, 2020 को पाठ का शुभारंभ किया गया तथा 21 फरवरी, 2020 को पाठ का समापन हुआ और पूर्णाहुतिस्वरूप यज्ञ संपन्न हुआ।

शिवरात्रि पर्व का संदेश श्री ईश्वर शरण पाण्डेय जी ने दिया। उन्होंने बताया कि भगवान शिव और उनकी तथा उनके परिवार की दिव्य विशेषताएँ हैं, जो कल्याण चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुकरणीय हैं। शिव परिवार के उत्तम आदर्शों को अपनाना ही भगवान शिव, माता पार्वती, भगवान गणेश आदि की सच्ची उपासना है। हमें आदर्श निस्पृह, त्यागपूर्ण जीवन तथा सहिष्णुता, समन्वय, सहयोग भरा पारिवारिक जीवन अपनाना चाहिए; यही शिवरात्रि का उद्देश्य है।

उद्बोधन के पश्चात पूजन तथा अभिषेक का क्रम संपन्न हुआ। जिसे श्री मृत्युंजय शर्मा जी एवं श्री पाण्डेय जी ने किया। तत्पश्चात पुष्पांजलि एवं प्रसाद वितरण के साथ पर्व आयोजन पूर्ण हुआ।

प्राणवान कार्यकर्त्ता शिविर

पूज्य गुरुदेव के कार्यों को पूरा करने के लिए लाखों लोग प्रयत्नरत हैं; वे मिशन की गतिविधियों को सफल बनाने हेतु सतत सक्रिय रहते हैं। उनमें भी कुछ विशिष्ट प्राण-प्रतिभासंपन्न परिजन बढ़-चढ़कर योगदान देते तथा गुरु कार्यों के लिए अनुकरणीय पुरुषार्थ संपन्न करते हैं। ऐसे प्राणवानों का शिविर प्रतिवर्ष यहाँ आयोजित किया जाता है।

23 फरवरी से 25 फरवरी, 2020 तथा 29 फरवरी से 2 मार्च, 2020 की अवधि में तीन दिवसीय प्राणवान शिविरों का कार्यक्रम यहाँ चला। जिसमें उत्तर प्रदेश, राजस्थान, म० प्र०, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र के परिजनों ने भाग लिया। परिजनों का तपोभूमि की ओर से उत्कृष्ट मार्गदर्शन श्री ईश्वर शरण पाण्डेय, श्री प्रमोद कुमार शर्मा, श्री राम मुरारी गुप्ता एवं श्री दीनदयाल अमृते जी ने किया। क्षेत्र से आए परिजनों ने भी अपने श्रेष्ठ अनुभव एवं अपनी उपलब्धियों, गतिविधियों का प्रेरणाप्रद विवेचन प्रस्तुत किया। आगंतुक सभी स्वजनों में नवीन ऊर्जा, चेतना का संचार हुआ। वे तपोभूमि के लिए, पूज्य गुरुदेव के मिशन के लिए और अधिक प्रखरता-तत्परता से अपने आप की क्षमता का नियोजन करने का संकल्प लेकर यहाँ से विदा हुए।

होली का पर्व

होली का पर्व हर्षोल्लास एवं समता-समरसता का पर्व है। सभी लोग अपनी आत्मीयता सद्भावना को व्यक्त करते हुए एकदूसरे को रंग-गुलाल लगाते और प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। इस वर्ष कोरोना वायरस के प्रकोप को ध्यान में रखते हुए बड़ी सावधानी से इस पर्व को मनाया गया। फाल्गुन पूर्णिमा की शाम को दीपयज्ञ के पश्चात होलिका दहन हुआ। होली के गीत गाए गए। धूल के दिन बड़े ही सौम्यपूर्ण ढंग से लोगों ने एकदूसरे को शुभकामनाएँ दीं।

आत्मीय अनुरोध

इस ग्रीष्म ऋतु में आप भी तप कीजिए

अधिकांश लोग ग्रीष्म ऋतु की प्रतीक्षा में रहते हैं, जब विद्यालयों में छुट्टियाँ रहती हैं। किसानों के ऊपर भी दबाव कम रहता। बेटे-बेटियों के विवाह भी इन्हीं दिनों होते हैं। लोग तीर्थयात्रा या हिल-स्टेशनों पर इन्हीं दिनों जाते हैं। इस पत्रिका के पाठकवृंद भी ग्रीष्मावकाश के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य योजनाएँ बना सकते हैं।

वर्ष के अन्य महीनों की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में किसान, विद्यार्थी, अध्यापक आदि को फुरसत रहती है। नौकरी करने वाले और व्यापारी वर्ग को भी अन्य महीनों की अपेक्षा इस अवधि में निश्चिंतता रहती है। जिन दिनों बच्चे स्कूल जाते हैं; माता-पिता को तनाव रहता है, पर परीक्षाओं के बाद माता-पिता अपने को तनाव-मुक्त पाते हैं।

हमें इन बहुमूल्य क्षणों में से एक को भी व्यर्थ नहीं जाने देना है। मनुष्यों की तपश्चर्या के लिए भी यह उपयुक्त समय है। फुरसत के समय को गायत्रीमाता और गुरुसत्ता को अर्पण करके विश्वव्यापी दैवी तत्त्वों की वृद्धि और पुष्टि का महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है। गायत्री का ज्ञान-प्रसार एक ऐसा महान कार्य है; जिसकी तुलना साधारण जप-तप से नहीं की जा सकती। यदि लुप्तप्राय गायत्री-ज्ञान की पुनः प्रतिष्ठापना भारत के घर-घर में हो जाए तो हम सभी का समग्र कायाकल्प हो सकता है। प्राचीनकाल में इस महाशक्ति के कारण ही घर-घर में सद्बुद्धि थी जिसके फलस्वरूप सर्वत्र सुख-शांति, समृद्धि, सहृदयता, सेवा और सद्भावना बिखरी पड़ी रहती थी।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए गायत्रीमाता की सर्वोत्तम पूजा यह दीखती है कि इस महान ज्ञान के प्रकाश से अधिक-से-अधिक अंतःकरणों को प्रकाशवान बनाया जाए। यों जप, ध्यान, हवन आदि सभी आवश्यक हैं, पर इस लुप्तप्राय महाज्ञान को प्रकाश में लाने के लिए प्रयत्न करना भी एक ऐसी साधना है; जिसकी महत्ता को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

राजा को अपना यशगान करने वाले चारण तथा सेवा-शुश्रूषा करने वालों की अपेक्षा वे मंत्री अधिक प्रिय होते हैं, जो उसके राज्य की रक्षा, व्यवस्था एवं वृद्धि के लिए जी-जान से जुटे रहते हैं। गायत्रीमाता, पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के लिए जो लोग ऐसा तप करते हैं; वे साधारण पूजा-उपासना करने वालों की अपेक्षा किसी भी प्रकार घाटे में नहीं रहेंगे।

ग्रीष्म ऋतु के अगले दो-तीन महीने (अप्रैल, मई, जून) जब रामनवमी, अक्षय तृतीया, बुद्ध पूर्णिमा, वट सावित्री, गायत्री जयंती, गुरुपूर्णिमा आदि विशिष्ट पर्व आते हैं, कुछ खास हैं। इस अवधि में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हाथ में लेकर सक्रिय हो जाना चाहिए। देवता से कुछ प्राप्त करने से पूर्व निश्चय ही पूजा की श्रद्धांजलि अर्पित करनी पड़ती है—यही सनातन सत्य है। कुछ त्याग किए बिना तो सांसारिक व्यक्ति भी, मित्र, कुटुंबी, स्वजन-संबंधी भी प्रसन्न नहीं होते, फिर पात्रत्व की परीक्षा के लिए देवता भी आराधकों से त्याग और तप की अपेक्षा करें तो इसमें आश्चर्य की कुछ बात नहीं। गीता में भगवान ने भी यही कहा है—"तुम देवताओं का उपकार करो—देवता तुम्हारा उपकार करेंगे। इस प्रकार की परस्पर सहायता से ही परम श्रेय प्राप्त होगा।" परमपूज्य गुरुदेव ने भी कहा है—"तुम मेरा काम करो—मैं तुम्हारा काम करूँगा।" इस सत्य को चरितार्थ करने के लिए, अपनी श्रद्धा की परीक्षा देने के लिए ग्रीष्म ऋतु का यह समय साधकों के लिए एक उत्तम अवसर है। चारों धाम की तीर्थयात्रा के लिए जिस प्रकार घर से निकलते हैं; उसी प्रकार गायत्रीमाता का अलख जगाने के लिए भ्रमण करने में यह समय लगाना चाहिए। उपासना में किसी व्यक्ति को स्थिर बुद्धि से तभी लगाया जा सकता है; जब उसे उस विषय की समुचित जानकारी करा दी जाए। इन दिनों अग्रलिखित अभियानों को हाथ में लेकर युग निर्माण मिशन को गतिशील बनाया जा सकता है—

(1) स्वाध्यायमंडलों द्वारा रुचि-परिष्कार।

(2) गृहे-गृहे यज्ञ एवं गायत्री-उपासना अभियान।

(3) अखण्ड ज्योति, युग निर्माण योजना आदि के पाठकों की संख्या में वृद्धि तथा पुस्तक मेले लगाना।

नियमित स्वाध्याय का अभ्यास

परमपूज्य गुरुदेव प्रतिदिन गायत्री महामंत्र का जप लगभग छह घंटे करते थे। उपासना से प्रसन्न होकर उनके गुरुदेव तथा गायत्रीमाता अपना आशीर्वाद सद्ज्ञान के रूप में देते थे। मंत्रजप के तुरंत बाद वे ज्ञानप्रसाद को जन-जन तक पहुँचाने के प्रयोजन हेतु लिखते थे और पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के माध्यम से उसे पाठकों तक पहुँचाने की व्यवस्था बनाते थे। इसमें उन्हें प्रतिदिन ढाई से चार घंटे तक और बैठना पड़ता था। जब ज्ञानदान का क्रम पूरा कर लेते थे; तब उन्हें चैन मिलता था और जल ग्रहण करते थे।

नियमित क्रम के कारण ही वे अखण्ड ज्योति तथा युग निर्माण योजना पत्रिकाओं सहित, 3200 पुस्तकों का प्रकाशन किया। हमारा दायित्व है कि हम उनके ज्ञान-दान की प्रक्रिया को बनाए रखें। हमें इस उद्‌देश्य को सफल बनाने के लिए इनका स्वाध्याय करना चाहिए और दूसरों को प्रेरित करना चाहिए।

सामूहिक स्वाध्याय

जिन्हें अकेले स्वाध्याय करने में समस्या हो, वे मिल-जुलकर एक साथ बैठकर स्वाध्याय करें। कोई भी इस प्रक्रिया का शुभारंभ अपने ही निवास पर कर सकता है। सप्ताह में कम-से-कम एक घंटे तो स्वाध्याय के लिए लगाएँ ही। यदि आप निश्चित करते हैं कि प्रत्येक रविवार को प्रात: 8 से 9 के बीच अपने निवास पर स्वाध्यायमंडल चलाएँगे, तो अपने परिचितों को पाँच मिनट पूर्व बुलाएँ। ठीक 8 बजे गायत्री मंत्र के उच्चारण के साथ दीप-प्रज्वलन या अगरबत्ती जला लें। अगले 40 मिनट युग निर्माण गायत्री साहित्य से कोई भी पुस्तक लेकर एक व्यक्ति पढ़े और अन्य श्रद्धापूर्वक सुनें, शेष 15 मिनट इसी विषय पर चर्चा करें। शांतिपाठ और प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन करें। प्रसाद में महँगी चीज न रखें। सबसे सरल है—तुलसीयुक्त जल या चिरौंजी दाने (मीठी गोलियाँ)।

कुछ दिन बाद लोग गुरुदेव के विचारों को सुनने-समझने में आनंद का अनुभव करेंगे। पुस्तक माँगकर ले जाएँगे और घर पर स्वाध्याय करेंगे। कुछ लोग अपने-अपने निवास पर भी इस प्रकार का स्वाध्याय मंडल चलाने की इच्छा व्यक्त करेंगे।

गायत्री मंत्रजप के दिव्य प्रयोग

परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री माता का विश्व का प्रथम मंदिर गायत्री तपोभूमि, मथुरा में जून, 1953 में बनवाया था। भूमि क्रय करने के लिए उन्होंने स्वयं की धनराशि लगाई और मंदिर निर्माण प्रारंभ करने के लिए वंदनीया माताजी के जेवरों का उपयोग हुआ। उसके बाद दानदाताओं का ताँता लग गया था। पूज्यवर ने सभी लोगों की दिव्य भावनाओं का उपयोग करने की दृष्टि से उनसे गायत्री मंत्रलेखन कराया और उनका पूजन कर उन्हें मंदिर में प्रतिष्ठित किया। निर्माणाधीन गायत्री मंदिर में भी हस्तलिखित गायत्री मंत्रों को प्रतिष्ठित किया जाएगा; जिसका लेखन साधकगण कर रहे हैं।

जेलों में गायत्री महायज्ञ

यदि कोई कहे कि वह जेल में यज्ञ करके आ रहा है, तो आप विश्वास नहीं करेंगे। वस्तुत: यह हुआ है। देखने में असंभव लगने वाला यह कार्य इंदौर सेंट्रल जेल (21 जनवरी, 2020) और भोपाल सेंट्रल जेल (8 मार्च, 2020) में हुआ है। धार (म० प्र०) की एक गृहिणी बहन विनीता खंडेलवाल ने अपने ससुर की स्मृति में, अपनी सास के संरक्षण में जेलों में जाकर नि:शुल्क मंत्रलेखन की कॉपियाँ और पेन देकर कैदियों से मंत्रलेखन कराया। जेल के अधिकारियों को इस मंत्रलेखन अभियान के चमत्कार प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। उन्होंने जेल परिसर में 108 कुंडीय यज्ञ का प्रस्ताव रखा और विनीता बहन ने स्थानीय गायत्री परिजनों द्वारा संपन्न कराया। इस अवसर पर 22 ऐसे कैदियों को रिहा किया गया, जिनके आचरण में उल्लेखनीय परिवर्तन उन्होंने देखा। जाते समय उन्होंने संकल्प लिए कि भविष्य में वे अच्छे इनसान बनेंगे।

विनीता बहन ने साढ़े तीन वर्ष पूर्व भोपाल के बंदियों को नि:शुल्क मंत्रलेखन कापियाँ और पेन देकर उनसे गायत्री मंत्रलेखन कराने का अभियान शुरू किया। गायत्री परिवार के अन्य परिजन जो अपने-अपने स्तर पर इस कार्य में रुचि रखते थे, वे विनीता बहन से नि:शुल्क कापियाँ लेकर अपने-अपने क्षेत्र में इस अभियान को गति देने लगे। अभियान गति पकड़ने लगा तो उन्होंने उत्साहित होकर विद्यालयों

के विद्यार्थियों के बीच भी यह प्रयोग किया। उसके बाद दिव्यांगों, सफाई कर्मचारियों तथा किन्नरों के बीच वे पहुँचीं और उन्हें गायत्री मंत्रलेखन के माध्यम से विकासोन्मुख करने में लग गईं। जहाँ-जहाँ 9, 51 और 108 कुंडीय यज्ञ होते थे, वहाँ वे जनसमुदाय को मंत्रलेखन की दिशा में मोड़ने लगीं। धीरे-धीरे यह अभियान मध्य प्रदेश के बाद, छत्तीसगढ़, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र और गुजरात तक फैल गया।

उन्हीं दिनों जेलों में सुधार-प्रक्रिया को गति देने को जेलर श्री लव सिंह, लक्ष्मण सिंह भदौरिया उपजेल अधीक्षक ने इन्हें जेल के कैदियों के बीच इस सुधारात्मक कार्य के लिए प्रेरित किया। फिर तो यह अभियान आगे बढ़ते ही गया। बातचीत में उन्होंने बताया कि इस संबंध में वे 55 जेलों में कार्य कर चुकी हैं और अभी तक पचास हजार मंत्रलेखन कापियाँ भरी जा चुकी हैं। पूरे अभियान में साढ़े चार लाख मंत्रलेखन कापियाँ वितरित की गईं। इसे केंद्रीय कारागार देवास जेल में कार्यरत जेल अधीक्षक श्री रमेश चंद्र आर्य और इन दिनों जिला सागर के जेल अधीक्षक श्री संतोष सोलंकी की प्रेरणा से इंदौर सेंट्रल जेल में गायत्री महायज्ञ की भूमिका बनी। वहाँ के जेल अधिकारियों ने जब देखा कि इन कैदियों में काफी सुधार हो रहा है, तो उन्होंने इसे पूर्णता देने के लिए एक गायत्री यज्ञ की प्रेरणा दी। पूर्व में 51 कुंडीय यज्ञ का निर्णय हुआ, पर जब इस आयोजन के प्रति उन्होंने कैदियों के उत्साह का ऑकलन किया तो उन्होंने 108 कुंडीय यज्ञ करने का मन बना लिया। इस कार्य में जेल अधीक्षक, इंदौर श्री राकेश जी भाँगरे का उत्साह उल्लेखनीय है। फिर क्या था इंदौर में 108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ हेतु तैयारियाँ शुरू हो गईं। जेल के परिसर में ही 51 कलशों की एक किलो मीटर लंबी कलश यात्रा निकाली गई। जिसमें 2500 पुरुष कैदी तथा 300 महिला कैदियों ने भाग लिया। 108 कुंडीय यज्ञ आकर्षण एवं श्रद्धा का केंद्र रहा। जेल प्रशासन के समुचित सूझ-बूझ से 1 वर्ष तक कैदियों को गायत्री मंत्रलेखन का अभ्यास कराया गया और इतनी बड़ी संख्या में इतने सारे महिला एवं पुरुष कैदी एक ही यज्ञशाला में यज्ञ कर इतिहास रच गए। पूरे अभियान में सुश्री रानी यादव, महिला प्रहरी इंदौर, श्री सतीश उपाध्याय, जेल अधीक्षक धार तथा श्री संजय परमार सहायक जेल अधीक्षक, मनावर (धार) के भी भरपूर सहयोग मिले।

यह समाचार जब भोपाल सेंट्रल जेल पहुँचा तो वहाँ भी इस संबंध में विचार-विमर्श हुआ। इस जेल में तो लगभग 2 वर्षों में 24000 मंत्रलेखन कापियाँ लिखी जा चुकी थीं और यहाँ पर कैदियों की संख्या भी अधिक थी। फिर क्या था—108 कुंडीय यज्ञ का निर्धारण हो गया। जेल अधीक्षक श्री दिनेश नरगावे ने सभी 3500 पुरुष कैदियों एवं 100 महिला कैदियों के सहयोग से डेढ़ कि.मी. लंबी 108 कलशों की कलश यात्रा तथा 108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ संपन्न करवा ही दिया। मुसलमान कैदियों ने भी यज्ञकुंडों का निर्माण किया और महिला कैदियों ने रंगोली तथा साज-सज्जा की जिम्मेदारी निभाई। कलश यात्रा में जेल में कार्यरत कर्मचारियों की पत्नियों ने भी भाग लियां तथा यज्ञ किया। जेल के लगभग 1500 साधक-साधिकाओं ने संकल्प लेकर सवा-सवा माह तक लगातार मंत्रलेखन किया। एक हजार कैदियों ने नशा का परित्याग कर, अच्छे इनसान बनने के संकल्प लिए।

विनीता बहन ने इस पूरे अभियान में 8000 गायत्री चालीसा, 8000 पेन, 500 बलिवैश्व के स्टिकर्स, 1000 माला, 2000 देवस्थापना चित्र, 3000 गायत्री मंत्र दुपट्टा नि:शुल्क वितरित किए। सुंदर अक्षरों में लिखने वाले 5000 लोगों को प्रमाणपत्र देकर उनका उत्साह संवर्द्धन भी किया।

मिशन की पत्रिकाएँ और पुस्तकें

अखण्ड ज्योति तथा युग निर्माण योजना पत्रिकाओं को कुछ परिजन मँगाकर घर-घर पहुँचाते हैं, स्वयं पढ़ते हैं और दूसरों को स्वाध्याय की प्रेरणा देते हैं। गरमी की छुट्टियों में परिजन अपने मित्रों, परिचितों तथा रिश्तेदारों को स्वाध्याय का महत्त्व बताकर उन्हें पत्रिकाओं के पाठक-सदस्य बना सकते हैं; पुस्तकों के स्वाध्याय करने की प्रेरणा दे सकते हैं और पुस्तक मेले लगवा सकते हैं। ये सारे कार्य प्राणवान कार्यकर्त्ताओं ने किए हैं, जो असंभव नहीं हैं। प्राणवान परिजनों से अपेक्षा की जाती है कि वे पत्रिका-पाठकों की संख्या में वृद्धि करेंगे और पुस्तक मेले लगाने के लिए परिश्रम करेंगे।

युग-मंदिर का निर्माण करें

जग जननी का वास जहाँ पर, युग-मंदिर का निर्माण करें,
युगऋषि के तप से आलोकित, तपस्थल में नव प्राण भरें।

ज्ञानगंग भू पर लाने को, किया भगीरथ तप गुरुवर ने,
ज्ञानामृत का पान कराने, युगसाहित्य रचा ऋषिवर ने,
त्याग तपस्या से अनुप्राणित, संस्कार अगणित धारण कर,
दुर्वासा जैसे ऋषियों ने, अर्जित किया स्वयं तपाकर,
प्राणशक्ति पूरित धरती पर, युग परिवर्तन अभियान चलें,
जग जननी का वास जहाँ पर, युग-मंदिर का निर्माण करें।

प्राणवान युग सैनिक बनकर, दुष्प्रवृत्तियों से टकराना,
गुरुसत्ता का संबल लेकर, सत्प्रवृत्तियों को विकसाना,
प्रतिगामिता कुचक्र को तोड़ें, रूढ़िवादिता को दें उखाड़,
हो मृतकभोज का बहिष्कार, दानव दहेज को दें पछाड़,
बनें सहायक दीन जनों के, निर्बल जन का परित्राण करें,
जग जननी का वास जहाँ पर, युग-मंदिर का निर्माण करें।

एक पिता का प्यार यहाँ पर, परिलक्षित होता हर तृण में,
माता की ममता का आँचल, लहराता देखा हर कण में,
जीवन सब दिया खपा जिनने, पीड़ित जन की सेवा करने,
नहीं क्षणिक विश्राम लिया जो, दीन-दुःखी की पीड़ा हरने,
जीवन का संगीत समन्वित, मधुमय गीतों का गान करें,
जग जननी का वास जहाँ पर, युग-मंदिर का निर्माण करें।

स्वार्थ नहीं परमार्थ श्रेष्ठ, यह हम सबको गया पढ़ाया,
निष्कंटक हो जीवनयात्रा, जगती को वह मार्ग सुझाया,
सुख-शांति और सहयोग भरा, धरती को स्वर्ग बनाना है,
सदाचरण सद्भाव समाहित, जन में देवत्व जगाना है,
वेद विहित जो ऋषिप्रणीत है, ऐसा ही धर्माचरण करें,
जग जननी का वास जहाँ पर, युग-मंदिर का निर्माण करें।

—राम मुरारी गुप्त